शब्दार्थसारमञ्जरी

चैत्रः
तण्डुलं
पचति

चैत्र
सु
तण्डुल
अम्
पच्
ति

संख्या
वर्त्तमानत्वम्

चैत्रः
०
तण्डुलः
कर्मत्वम्
पाकः
कृतिः

१ वृत्तिता
२ अनुकूलता
३ अनुकूलता
६ अवच्छेद्यत्वम्
५ समवायः
४ आश्रयना

डा. रमेश चन्द्र पण्डा

शब्दार्थसारमञ्जरी

सम्पादक एवं समीक्षक

डा. रमेश चन्द्र पण्डा

साहित्यकार सहयोगी प्रकाशन

भदैनी, वाराणसी

लेखक :

डॉ० रमेश चन्द्र पण्डा
अध्यक्ष, व्याकरण विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005

प्रकाशक :

साहित्यकार सहयोगी प्रकाशन
भदैनी, वाराणसी

प्रथम संस्करण : 1996

मूल्य : 45/ रुपये

मुद्रक :

साहित्यकार प्रेस
भदैनी, वाराणसी

स्वर्गीय पूज्य पिताजी
को
सादर समर्पित

—रमेश

सम्मतियां

॥ॐ॥

प्रोफेसर डॉ० सुधांशुशेखर शास्त्री
सङ्कायप्रमुख
संस्कृतविद्या धर्मविज्ञानसंकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विद्वद्वरेण्य श्रीजयकृष्णभट्टाचार्यकृत शब्दार्थसारमञ्जरी नामक ग्रन्थ लघुकाय होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि उड़िया लिपि में उपलब्ध है जो संस्कृत एवं हिन्दीभाषी समाज के लिए उपयुक्त नहीं हो पा रहा था। डा० रमेशचन्द्र पण्डा, व्याकरण विभागाध्यक्ष, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकाय, का० हि० वि० वि० ने इसे देवनागरीलिपि में आबद्ध किया तथा साथ ही हिन्दी भाषा में इस पर विशद विवेचन भी प्रस्तुत किया।

प्रकृतग्रन्थ में नैयायिकों के सिद्धान्त के अनुसार शाब्दबोध का विचार प्रस्तुत किया गया है। डा० पण्डा ने ग्रन्थगत विषयों की विवेचना करते हुए लकारार्थ निरूपण व्याकरण में प्रसिद्ध शतृ, शानच्, अनियर्, क्त, क्तवतु, ण्वुल्, प्रत्ययों, आख्यातशक्ति, द्विकर्मक क्रिया, कारकार्थ, समासार्थ, नञर्थ एवं शक्तिग्रहोपायों का समुचित प्रतिपादन प्रस्तुत किया है।

छात्रों के सौविध्य को ध्यान में रखकर डा० पण्डा ने बड़े ही मनोरम ढंग से रेखाचित्रों के माध्यम से तत्तद्वाक्यों के शाब्दबोध का प्रकारप्रदर्शन किया है जो अपने आपमें अनूठा है। मुझ पूर्ण विश्वास है कि उक्त ग्रन्थ विद्वत समाज एवं छात्र वर्ग में समुचित आदर प्राप्त करेगा। मैं भगवान् श्रीविश्वनाथ से डा० पण्डा की उन्नति की कामना करता हूँ।

सुधांशुशेखर शास्त्री

प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय,
भू० पू० शङ्काय प्रमुख,
संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

॥ श्रीः ॥

भास्कराचार्य की दृष्टि में व्याकरणशास्त्र के अध्ययन बिना कोई भी व्यक्ति किसी भी शास्त्र को सुनने (पढ़ने) का अधिकारी नहीं होता। इस उक्ति का महत्व उस समय बढ़ जाता है जब व्याकरण के अतिरिक्त किसी अन्य शास्त्र का विद्वान् यह उद्घोष करता है। व्यावहारिक दृष्टि से भी व्याकरण शास्त्र की आवश्यकता सुस्पष्ट है। हम संस्कार वश वक्ता का तात्पर्य समझ लेते हैं। वस्तुतः किसी भी शब्द के अभिप्राय को ज्ञात करने की एक विशिष्ट प्रक्रिया है जो 'शाब्दबोध' नाम से प्रतिपादित है। सम्यक् प्रकार से 'शाब्दबोध' व्याकरण द्वारा प्रतिपादित सरणि एवं प्रकृति-प्रत्यय के वास्तविक ज्ञान से ही सम्भव है। प्रस्तुत ग्रन्थ "शब्दार्थसारमञ्जरी" में शाब्द-बोध को ही प्रतिपादित किया गया है। "शाब्दबोध" की प्रक्रिया भी शास्त्रानुसार कुछ भिन्न-भिन्न होती है। "शब्दार्थसारमञ्जरी" न्याय-शास्त्र गत शाब्दबोध प्रक्रिया का प्रतिपादन करती है।

यह ग्रन्थ प्रथम बार प्रकाश में आ रहा है। श्रीजयकृष्ण भट्टाचार्य द्वारा विरचित इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि राज्य संग्रहालय भुवनेश्वर में सुरक्षित थी। उत्कललिपि एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध यह एक महत्व पूर्ण ग्रन्थ है, जिसका हिन्दी भाषानुवाद के प्रकाशन कर डा० रमेश चन्द्र पण्डा अध्यक्ष व्याकरण विभाग का० हि० वि० वि० ने सराहनीय कार्य किया है। इन्होंने अनुवाद को सरल एवं सुबोध बनाने के लिए शाब्दबोध के आधार एवं सम्बन्धों को सचित्र प्रस्तुत किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है जिज्ञासुगण इस ग्रन्थ से लाभान्वित होंगे। ग्रन्थ की सार्थकता भी पाठकों की सन्तुष्टि से ही होती है। मैं इस सफल प्रयास हेतु डा० रमेश चन्द्र पण्डा को साधुवाद देता है।

प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय

डा० केदारनाथ त्रिपाठी
भू० पू० अध्यक्ष, दर्शन विभाग
प्रा० वि० ध० वि० संकाय
का० हि० वि० वि०

व्याकरण शास्त्र वर्ण, पद एवं वाक्य तीनों का सर्वातिशायी विचार प्रस्तुत करने वाला शास्त्र है। प्रत्याहार सूत्रों के साथ वर्णात्कारः, ऋॢवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्, सुप्तिङन्तं पदम्, समर्थः पदविधिः, वाक्यस्य टेःप्लुत उदात्तः इत्यादि वचन इसके उपोद्बलक हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण की अपेक्षा अनुमान प्रमाण का क्षेत्र व्यापक है और उससे भी व्यापक क्षेत्र शब्द प्रमाण का है लौकिक-वैदिक शब्दों के रूप में। शक्ति का अन्यतम ग्राहक उपमान प्रमाण तो इसका अविनाभाव अङ्ग ही है। जैसा कि 'शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान... ...इसके द्वारा प्रतिपादित हुआ है। मनीषिवर्य श्री जयकृष्ण भट्टाचार्य द्वारा संस्कृत भाषा किन्तु उड़ियालिपि में निबद्ध प्रस्तुत ग्रन्थ शब्दार्थ-सारमञ्जरी' शब्दप्रमाण के अन्तर्गत शब्दार्थ एवं शाब्दबोध विचार को साररूप में प्रस्तुत करता है, जो अध्येतृवर्ग के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

इसे का. हि. वि. वि. के संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय में व्याकरण विभाग के अध्यक्ष, व्याकरणशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् डा० रमेशचन्द पण्डा महोदय ने राष्ट्रभाषा एवं देवनागरी लिपि में अपने कुशल सम्पादन एवं विस्तृत समीक्षा के साथ संस्कृत-जगत् के समक्ष अत्यन्त उपयोगी कृति के रूप में प्रस्तुत किया है। जैसे रेखागवय से वास्तविक गवयाकृति का ज्ञान हो जाता है, रेखालिपि से वास्तविक वर्ण, पद और वाक्य की प्रतीति हो जाती है, वैसे ही विद्वान् सम्पादक ने रेखाचित्रों के माध्यम से शाब्दबोध की प्रक्रिया को बड़ी ही कुशल के साथ व्यक्त किया है, यह अनुपम है। डा० पण्डा जी का यह कार्य अत्यन्त ही श्लाघनीय है, एतदर्थ ये धन्यवादार्ह हैं। आशा है ये आगे भी ऐसे ही महत्वपूर्ण कृतियों से संस्कृत जगत् को लाभान्वित करेंगे।

केदारनाथ त्रिपाठी

चक्रवर्ती पं॰ रामाधीन चतुर्वेदी
भू. पू. व्याकरणविभागाध्यक्ष
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

मनीषी डा॰ रमेशचन्द्र पण्डा की 'शब्दार्थसारमञ्जरी' पुस्तक मैंने पढ़ी। इसमें मूल ग्रंथ 'सारमञ्जरी' को भूमिका के साथ अधिक सौरभ प्रदान किया गया है। गमनशील जगत् के मूल में सदा कालतत्त्व विद्यमान रहता है जिसे वर्तमान, भूत तथा भविष्य की उपाधियों से समझा जाता है। इन वर्तमान आदि तीन कालों से शब्द रूप वृषभ संबद्ध है जिसका बोध वेद के प्रधान अङ्ग व्याकरण शास्त्र से होता है, क्योंकि व्याकरण में कालतत्त्व तथा उसके आधार पर पद के प्रकृति-प्रत्ययतत्त्व का विवेचन एवं वाक्य से अर्थबोध-प्रकार का निरूपण बड़ी गम्भीरता के साथ हुआ है जिसे समझने के लिए सुगम उपाय होते रहते हैं। अस्तु।

डा॰ पण्डा जी का प्रयत्न इस विषय में श्लाघनीय है। इन्होंने वर्तमान आदि कालों के पारिभाषिक लक्षणों तथा प्रकृति-प्रत्यय आदि के सम्बन्धों का निरूपण कर शाब्दबोध प्रक्रिया को रेखाचित्र के माध्यम से सुबोध बना दिया है। इससे शाब्दिक ज्ञान की वृद्धि होगी तथा विज्ञजन इससे लाभान्वित होंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इस कार्य के लिए मैं डा॰ पण्डा को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा इनके अभ्युदय की कामना करता हूँ।

रामाधीन चतुर्वेदी

आत्मनिवेदन

●

'शब्दार्थसारमञ्जरी' के नाम से एक शाब्दबोध ग्रन्थ का अप्रकाशित हस्तलेख मुझे राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर से प्राप्त हुआ जिसके लेखक श्री जयकृष्ण भट्टाचार्य हैं। ग्रन्थ के मङ्गलाचरण और अन्तिम श्लोक से ग्रन्थकार का नाम ज्ञात होता है जो इस प्रकार है—

मङ्गलाचरण :—

हेम्बचरणं वन्द्यं
विघ्ननाशकरं परम्।
प्रणम्य जयकृष्णेन
क्रियते सारमञ्जरी॥

अन्तिम श्लोक :—

आलोच्य विविधं ग्रन्थं
विचार्य च पुनः पुनः।
कृतेयं जयकृष्णेन
शब्दार्थसारमञ्जरी॥

इस नाम के अतिरिक्त ग्रन्थकार के परिचय एवं काल के संबंध में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

प्रस्तुत ग्रन्थ का हस्तलेख उत्कललिपि में है और इसका मुख्य विषय शाब्दबोध है। नैयायिकों के सिद्धान्तानुसार शाब्दबोध की प्रक्रिया प्रदर्शित की गई है। शब्द से प्राप्त ज्ञान को शाब्दबोध कहते हैं। यहाँ शब्द से वाक्य का भी ग्रहण होता है। अतः शाब्दबोध का अर्थ वाक्यार्थबोध होता है। वाक्यार्थ के प्रतिपादन के लिए जो पद्धति

अपनाई जाती है, वह इस प्रकार है—पहले वाक्यस्थ समस्त सुबन्त और तिङन्त पदों को पृथक् किया जाता है। उसके पश्चात् प्रत्येक पद के प्रकृति और प्रत्ययों को पृथक् रूप से प्रदर्शित किया जाता है उसके बाद प्रत्येक प्रकृति और प्रत्यय के अर्थ का निर्देश होता है। इन सभी अर्थों को विविध सम्बन्धों के द्वारा जोड़ने के पश्चात् सम्पूर्ण वाक्य का शाब्दबोध हो जाता है। नैयायिकों के मत में प्रथमान्त पद का अर्थ ही शाब्दबोध में मुख्य होता है और अन्य सभी अर्थ विशेषण के रूप में भासमान होते हैं। जैसे 'चैत्रः तण्डुलं पचति' इस वाक्य में प्रथमान्त पद 'चैत्रः' है। अतः इस वाक्य में चैत्रपदार्थ मुख्य होगा और तण्डुलादि पदों के अर्थ विशेषण के रूप में उपस्थित होंगे।

शाब्दबोध जैसे कठिन विषय का ग्रन्थकार ने अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य संस्कृत भाषा के माध्यम से विचार किया है। शाब्दबोध से सम्बद्ध धात्वर्थ, लकारार्थ प्रभृति विषयों का भी संक्षिप्त विचार प्रस्तुत ग्रन्थ में उपलब्ध है।

हमने 'शब्दार्थसारमञ्जरी' ग्रन्थ का सम्पादन एवं प्रकाशन करते हुए भूमिका में ग्रन्थगत प्रायः सभी विषयों की हिन्दी भाषा के माध्यम से समीक्षा की है। इसके साथ-साथ ग्रन्थ में प्रतिपादित सिद्धान्तों के आधार पर ३० वाक्यों के शाब्दबोध का प्रदर्शन रेखा-चित्र के माध्यम से किया है। यदि मेरे इस परिश्रम से किसी भी विद्यार्थी को कुछ लाभ होगा तो मैं आनन्दित होऊँगा।

पाठकों से निवेदन है कि इस ग्रन्थ में यदि कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों तो सुधार कर मुझे सूचित करने की कृपा करें।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन महानुभावों ने सम्मति, प्रेरणा, शुभेच्छा एवं सहयोग प्रदान किया उनके प्रति मैं सादर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

—रमेशचन्द्र पण्डा

अनुक्रम

भूमिका

तीन काल—

संस्कृत भाषा में सामान्य रूप से 'अतीत' 'भविष्यत्' और 'वर्तमान'-इन तीन कालों को स्वीकार किया गया है। 'सारमञ्जरी' ग्रन्थ के आदि में ग्रन्थकार ने इन तीन कालों के स्वरूप का विवेचन किया है। इनके मत में 'वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम्' 'वर्तमान प्रागभावप्रतियोगित्वम्' और 'शब्दप्रयोगाधिकरणत्वं वर्त्तमानत्वम्' यथाक्रम अतीत, भविष्यत् तथा वर्तमान के स्वरूप हैं। इन स्वरूपों की व्याख्या इस प्रकार है—

(क) वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम् अतीतत्वम्—

जो काल बीत चुका है, अतएव वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, उसे अतीत कहा जाता है। वर्तमाने यो ध्वंसः (अभावः) तस्य प्रतियोगित्वम् वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम्। जिसका अभाव होता है, उसे प्रतियोगी कहा जाता है। जैसे घट के अभाव का प्रतियोगी घट है। 'प्रतियोगी' शब्द न्यायशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। ध्वंस का अर्थ अभाव है। अभाव चार प्रकार का होता है-प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव एवं अन्योन्याभाव। यहाँ ध्वंस पद से प्रध्वंसाभाव का ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार प्रध्वंसाभाव के प्रतियोगी को अतीत कहते हैं। प्रध्वंसाभाव का स्वरूप न्यायशास्त्र में इस प्रकार निरूपित किया गया है-'सादिरनन्तः प्रध्वंसः'। अर्थात् जो आदिसहित है और अन्तरहित है, उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं। जैसे कि घट की उत्पत्ति के पश्चात् घट का प्रध्वंसाभाव होता है। प्रध्वंसाभाव आदि सहित है, क्योंकि वह घटजन्य है। इसका अन्त भी नहीं है, क्योंकि इसका प्रतियोगी उपलब्ध नहीं होता है (स्वनिरूपितप्रतियोगिताशून्यत्वम्)

(ख) वर्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वं भविष्यत्त्वम्—

अभी जिसका प्रागभाव उपलब्ध है, उसके प्रतियोगी को भविष्यत् काल कहते हैं। अर्थात् जो अभी नहीं है और आगे आने वाला है, उसे भविष्यत् कहते हैं। प्रागभाव का लक्षण इस प्रकार कहा गया है--अनादिः सान्तः प्रागभावः। अर्थात् जो आदिरहित और अन्त सहित है उसे प्रागभाव कहते हैं। यह आदिरहित है, क्योंकि प्रागभाव किसी से जन्य नहीं है। यह अन्तसहित है, क्योंकि यह प्रतियोगी का जनक होता है।

(ग) शब्दप्रयोगाधिकरणत्वं वर्त्तमानत्वम्—

शब्द प्रयोग का अधिकरण जो काल है उसे वर्त्तमान काल कहते हैं। जैसे कि 'इह घटः अस्ति' इत्यादि शब्दों का प्रयोग जिस काल में होता है, उस काल को वर्तमानकाल कहते हैं।

लकारों का शक्तिनिरूपण—

पाणिनि के अनुसार संस्कृत भाषा में दस लकारों का प्रयोग होता है। ये दस लकार हैं—लट्, लिट्, लुट्, लृट् लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्। इनमें से लेट् लकार का केवल वेद में ही प्रयोग होता है। लौकिक संस्कृत में लेट् लकार का प्रयोग नहीं होता है। इसलिए इस ग्रन्थकार ने भी लेट् लकार को छोड़कर अन्य सभी नौ लकारों के अर्थ का निरूपण किया है।

लकार	अर्थ
लट्	वर्तमानत्व
लिट्	परोक्षत्व, अतीतत्व
लुट्	भविष्यत्त्व
लृट्	,,
लोट्	भविष्यत्त्व, आशिष, प्रेरणा
लङ्	अतीतत्व
विधिलिङ्	भविष्यत्त्व, विधि, सम्भावना
आशीर्लिङ्	भविष्यत्त्व, आशिष

लुङ्   अतीतत्व

लृङ्   अतीतत्व, क्रियातिक्रम

अर्थ के उल्लेख करने के पश्चात् ग्रन्थकार ने उसका आशय भी बताया है। वर्तमानत्व, भविष्यत्त्व तथा अतीतत्व के आशय का वर्णन किया जा चुका है। अतः अन्य अर्थों के आशय को यहाँ स्पष्ट किया जा रहा है।

आशिष—

आशीर्लिङ् तथा लोट्—इन दोनों लकारों का अर्थ आशिष है। 'आशीः शुभचिन्तनम्' अर्थात् शुभचिन्तन को ही आशिष या आशीर्वाद कहा जाता है। जैसे 'शतं जीव देवदत्त' अथवा 'शतं जीव्याः देवदत्त' इन दोनों वाक्यों का वक्ता, देवदत्त का शुभचिन्तन करता है कि वह सौ साल जिये। अतः दोनों वाक्यों के क्रियापदों में क्रमशः 'लोट्' तथा 'आशीर्लिङ्' का प्रयोग किया गया है।

प्रेरणा—

लोट् लकार का अर्थ प्रेरणा है। 'प्रेरणा प्रवर्तनम्' किसी भी कार्य में किसी को प्रवृत्त करना ही प्रेरणा है। जैसे—'देवदत्त! व्याकरणं पठ' इस वाक्य से देवदत्त को व्याकरणशास्त्र के पठनकार्य में प्रवृत्त किया जा रहा है। अतः इस वाक्य में लोट् लकार का प्रयोग है।

विधि—

विधिलिङ् का अर्थ विधि है। 'विधिः कर्त्तव्यस्योपदेशः' कर्तव्य के लिये जो उपदेश दिया जाता है, उसे विधि कहते हैं। जैसे-'स्वर्गकामो यजेत' इस वाक्य में 'स्वर्ग की इच्छा रखने वालों को यज्ञ करना चाहिए'-यह उपदेश दिया गया है। अतः विधिलिङ् का प्रयोग किया गया है। विधिलिङ् का अर्थ सम्भावना भी है। 'सम्भावना फलकल्पनम्' अर्थात् फल की कल्पना करना ही सम्भावना है।

क्रियातिक्रम—

किसी भी कमी के कारण क्रिया के निष्पादन न हो पाने को

क्रियातिक्रम कहते हैं। यह क्रियातिक्रम लृङ् लकार का अर्थ है।

लकारातिरिक्त प्रत्ययों का अर्थ—

यङ्—

बोभूयते (भू+यङ्+त) पापच्यते (पच्+यङ्+त) इत्यादि प्रयोगों में यङ् प्रत्यय का विधान किया गया है। इस यङ् प्रत्यय के दो अर्थ स्वीकृत किये गये हैं–क्रियासमभिव्याहारत्व और अतिशयितत्व। क्रियासमभिव्याहार का अर्थ है–क्रिया का समभिव्याहार अथवा क्रिया का बार-बार होना। उदाहरणस्वरूप बोभूयते प्रयोग में 'भवन' अथवा 'सत्ता' क्रिया का बार-बार होना 'यङ्' प्रत्यय का अर्थ है।

सन्—

'सन्' प्रत्यय का अर्थ है–'इच्छा'। अब प्रश्न होता है कि किस विषय की इच्छा 'सन्' प्रत्यय का अर्थ है? तो धात्वर्थ विषय की इच्छा ही इस प्रत्यय का अर्थ है। 'पिपठिषति' प्रयोग में जो 'सन्' प्रत्यय है, उसका अर्थ है पढ़ने सम्बन्धी विषय की इच्छा। यह भी यहां ध्यान में रखना चाहिए कि 'सन्' प्रत्यय का पूर्वोक्त अर्थ तब सम्भव है जब इच्छा करने वाला तथा उस वाक्य का कर्त्ता समान हो। 'रामः पिपठिषति' इस वाक्य में इच्छा करने वाला तथा कर्त्ता राम हैं। अतः इस वाक्य से 'राम पढ़ने की इच्छा रखता है' यह अर्थ समझा जाता है।

णिच्—

'गमयति' इत्यादि प्रयोगों में जो 'णिच्' प्रत्यय है, उसका अर्थ है हेतुमान् अथवा प्रयोजक व्यापार। 'देवदत्तः यज्ञदत्तं ग्रामं गमयति' इस वाक्य से दो व्यापार समझे जाते हैं—

१. ग्राम को जाना

२. ग्राम को जाने के लिए प्रेरित करना।

देवदत्त के द्वारा ग्राम को जाने के लिए प्रेरित करने के पश्चात् यज्ञदत्त ग्राम को जाता है। अतः पहले व्यापार का जनक द्वितीय व्यापार है और पहला व्यापार यज्ञदत्त करता है। द्वितीय व्यापार देवदत्त करता है, जो णिच् प्रत्यय का अर्थ है।

तृच्—

'कर्तृ' 'पक्तृ' इत्यादि प्रयोगों में जो तृच् प्रत्यय का विधान किया गया है, उसका अर्थ है वर्तमानत्व।

शतृ एवं शानच्—

शतृ एवं शानच् प्रत्ययों के तीन अर्थ स्वीकृत हुए हैं—१. वर्तमानत्व, २. एककर्त्तृत्व तथा ३. एककालिकत्व। जैसे 'देवदत्तः खादन् वदति' इस वाक्य में 'खादन्' प्रयोग में जो शतृ प्रत्यय है, उसके पूर्वोक्त तीन अर्थ होते हैं। यहां खादन क्रिया और कथन (वदन) क्रिया-इन दोनों क्रियाओं का कर्त्ता देवदत्त है और खादन और वदन ये दो क्रियायें एक ही समय में होती हैं। इस प्रकार यहां शतृ प्रत्यय के एककर्तृकत्व, एककालिकत्व तथा वर्तमानत्व-ये तीन अर्थ समझे जाते हैं।

तव्य और अनीयर्—

'गन्तव्यम्' और 'गमनीयम्' इत्यादि प्रयोगों में क्रम से तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं। इन दोनों प्रत्ययों का अर्थ है-

१. भविष्यत्त्व तथा २. विधि

क्त एवं क्तवतु—

'पठितम्' 'पठितवान्' इत्यादि प्रयोगों में क्रमशः जो क्त एवं क्तवतु प्रत्यय होते हैं, उन प्रत्ययों का अर्थ है 'अतीतत्व'।

तुमुन् एवं ण्वुल्—

तुमुन् एवं ण्वुल् प्रत्ययों के दो अर्थ होते हैं--१. क्रियार्था क्रिया एवं २. एककर्तृकत्व। एक क्रिया को उद्देश करके जो क्रिया सम्पन्न की जाती है, उसे क्रियार्था क्रिया कहते हैं। जैसे-'द्रष्टुं गच्छति' इस वाक्य में गमन क्रिया क्रियार्था क्रिया है। क्योंकि दर्शन क्रिया को उद्देश करके यहां गमन क्रिया सम्पन्न की जा रही है। द्रष्टुम्, खादितुम् इत्यादि प्रयोगों में तुमुन्, और 'पाचको व्रजति', 'दर्शको व्रजति' इत्यादि प्रयोगों में ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

खल्, घञ् एवं ल्युट्—

खल्, घञ् एवं ल्युट् प्रत्ययों के दो अर्थ हैं—१. कालसामान्य एवं २. भाव। ईषत्करः, दुष्करः सुकरः इत्यादि प्रयोगों में खल्; पाकः, सारः, इत्यादि प्रयोगों में घञ्; गमनम्, भोजनम्, चलनम् इत्यादि में ल्युट् प्रत्यय उपलब्ध होते हैं।

क्त्वा एवं ल्यप्—

क्त्वा एवं ल्यप् प्रत्ययों के दो अर्थ होते हैं-१. क्रियागतानन्तर्य, २. क्रियासमानकर्तृको भावः। 'क्रियागतानन्तर्य' पद से 'एक क्रिया के अव्यवहित पश्चात्' यह अर्थ समझा जाता है। इन प्रत्ययों द्वारा ऐसी क्रिया की भी अभिव्यक्ति होती है, जिसका कर्त्ता और मुख्य क्रिया का कर्त्ता समान हो। जैसे भुक्त्वा गच्छति इस वाक्य में भोजन के अव्यवहित पश्चात् गमन क्रिया होती है। यहाँ यह भी प्रतीत होता है कि गमनक्रिया एवं भोजनक्रिया-इन दोनों क्रियाओं का कर्त्ता समान है। भुक्त्वा, गत्वा इत्यादि प्रयोगों में 'क्त्वा' प्रत्यय एवं आगत्य, प्रकृत्य इत्यादि प्रयोगों में ल्यप् प्रत्यय पाया जाता है।

आख्यातशक्तिनिरूपण

लकारों के स्थान पर विहित तिङ् प्रत्ययों को आख्यात कहते हैं। वे तिङ् प्रत्यय तीन प्रकार के होते हैं—१. कर्तृविहित २. कर्मविहित और ३. भावविहित। इन तीनों के क्रमशः उदाहरण हैं—१. देवदत्तः ओदनं पचति, २. देवदत्तेन ओदनः पच्यते, ३. देवदत्तेन पच्यते। इन तीनों प्रकारों के अर्थों में से कर्तृविहित आख्यात का अर्थ है 'कृति'। शक्यतावच्छेदक कृतित्व है। शक्य (अर्थ) के एक धर्म को शक्यतावच्छेदक कहते हैं। कृतित्व के रूप में शक्यतावच्छेदक मानने पर लाघव होता है। क्योंकि यदि कर्तृविहित आख्यात का अर्थ 'कर्त्ता' होता है तो शक्यतावच्छेदक कर्तृत्व होगा, जिसका अर्थ है 'कृतिमत्त्व'। कृतिमत्त्व कृति से भिन्न नहीं है। कृति एक नहीं होती है, अपितु अनेक होती हैं। इस प्रकार शक्यतावच्छेदक भी अनेक होने

के कारण गौरव होगा। परन्तु यदि शक्यतावच्छेदक कृतित्व है, तो कृतित्व एक होने के कारण लाघव होगा। अतः आख्यात का 'कर्ता' अर्थ न मानकर 'कृति' अर्थ मानना उचित होगा।

(यदि कोई ऐसी शङ्का करे कि) आख्यात का अर्थ कर्ता न होने पर 'चैत्रः पचति' इस प्रयोग में चैत्र पद से 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' सूत्र से तृतीया का विधान हो जायेगा, जो असाधु प्रयोग है। इस सत्र का अर्थ यह है कि तिङ्, कृत्, तद्धित और समास से अनुक्त होने से कर्त्ता एवं करण में तृतीया विभक्ति होती है। अतः कहा गया है कि तिङ् के कर्ता अर्थ न होने पर कर्ता अनुक्त होगा और 'चैत्रः पचति' प्रयोग में चैत्र से तृतीया की प्राप्ति हो जायेगी। इस शङ्का का समाधान इस प्रकार किया जाता है कि जहाँ तिङ् प्रत्यय से कर्तृगत संख्या अनुक्त हो, वहाँ कर्तृपद से तृतीया विभक्ति होती है। यह ही पूर्वोक्त सूत्र का अर्थ है। पूर्वोक्त प्रयोग में तिङ्प्रत्यय कर्तृगत से संख्या उक्त होने के कारण चैत्र पद से तृतीया न होकर प्रथमा ही होगी। कतृविहित आख्यात का यद्यपि कर्ता अर्थ नहीं है, तथापि संख्या अर्थ है ही। अतः पूर्वोक्त युक्ति से व्यापार का भी आख्यातार्थत्व खण्डित हो जाता है।

इसलिए कर्तृविहित आख्यात के 'कृति', वर्तमानत्वादि अर्थ सिद्ध होते हैं। यहाँ आदि पद से अतीतत्व, भविष्यत्त्व गृहीत होते हैं। 'चैत्रः अन्नं पचति' वाक्य के 'अन्नकर्मताकपचनानुकूलवर्तमानकालिककृत्याश्रयाभिन्नैकत्ववान् चैत्रः' इस शाब्दबोध में कृति में वर्तमानत्व का और कर्त्ता में एकत्व का अन्वय होता है। इसका आशय यह है कि शाब्दबोध में कालों (वर्तमानत्व, भूतत्व, भविष्यत्त्व) का अन्वय कृति में तथा एकत्व, द्वित्व और बहुत्व संख्या का कर्त्ता में अन्वय होता है।

कर्मविहित आख्यात का फल अर्थ है। फल को धात्वर्थतावच्छेदक माना जाता है। व्यापार भी धात्वर्थतावच्छेदक। धातु का 'फलावच्छिन्न व्यापार' अर्थ होने पर धातु सकर्मक होती है, अन्यथा नहीं। कर्माख्यात का फल, वर्तमानत्वादि, एकत्वादि अर्थ होते हैं। शाब्दबोध में वर्तमानत्वादि का फल के साथ अन्वय होता है और एकत्वादि

संख्याओं का फलाश्रय कर्म के साथ अन्वय होता है संख्या अभिहित होने के कारण 'तण्डुलः पच्यते' इस प्रयोग में 'तण्डुल' पद से द्वितिया का विधान नहीं होता है। देवदत्तेन पच्यते तण्डुल.' इस वाक्य का शाब्दबोध इस प्रकार है—'देवदत्तनिष्ठकृतिजन्यपचनजन्यवर्तमान-कालिक विक्लितिरूपफलाश्रयैकत्ववान् तण्डुल:'। एक पद से भासमन पदार्थं द्वय का विशेष्य विशेषण भाव से अन्वय नहीं होता है। इस व्युत्पति का यह स्वीकार नही किया गया है। इसलिये कर्माख्यात से प्रतीयमान 'वर्तमानत्वादि तथा फल का अन्वय विशेष्य-विशेषण भाव से ही किया जाता है।

भावविहित आख्यात का धात्वर्थ ही है। क्योंकि भावविहित आख्यात स्थल में प्रथमान्त पद नहीं रहता है, जिसके साथ आख्या-तार्थ संख्या का अन्वय हो। (आख्यातार्थ संख्या का प्रथमान्तपद के अर्थ से अन्वय होता है।) अभी प्रश्न यह है कि भावाख्यात में एक वचन का प्रमोग कैसे किया जाता है? इसके उत्तर में कहा जाता है कि आख्यात का एकत्व वाचक प्रत्यय केवल पद की साधुता के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

आख्यातविषेशार्थ कथन

सविषयक धात्वर्थ (ज्ञान, द्वेष, प्रभृति सविषयक धात्वर्थ है) के वाचक धातुओं के साथ विद्यमान कर्तृविहित आख्यात का 'आश्रयत्व' अर्थ लक्षणा से प्रतीत होता है, कृ द्विष्, यज्, ज्ञा, प्रभृति धातुओं को सविषयक धात्वर्थ वाचक धातु कहते हैं। इन धातुओं से परे आने वाले कर्तृविहित आख्यातों का 'आश्रयत्व' अर्थ होता है। "अचेतनो रथो गच्छति" इस वाक्य में गम् धातु से परे विद्यमान 'तिप्रत्यय का आश्रयत्व' अर्थ लक्षणा से प्रतीत होता है। "नश्यति" पद में 'ति' का 'प्रतियोगित्व' अर्थ लक्षणा से प्रतोंत होता है।

शाब्दबोध प्रकार

अब शाब्दबोध के प्रकार कहे जाते हैं। जैसे 'तण्डुलं पचति' इस वाक्य का शाब्दबोध इस प्रकार है—"तण्डुल पद से तण्डुल पदार्थं की

उपस्थिति होती है और द्वितीया विभक्ति से कर्मतारुप फल की उपस्थिति होती है। तण्डुल पदार्थ और कर्मतारुप फल के बीच वृत्तित्व सम्बन्ध है। बृत्तित्व का आधेयत्व अर्थ है। पच् धातु से पाक पदार्थ की उपस्थिति होती है। पाक का विक्लित्यनुकूलव्यापार अर्थ है। रन्धन पात्र को चूल्हा के ऊपर रखने से आरम्भ कर चूल्हा से उसके उतारने तक जितनी क्रियायें होती हैं, उस सभी क्रिया समुदाय को 'विक्लित्यनुकूलव्यापार' कहा जाता है। इस पाक पदार्थ के साथ अनुकूलता सम्बन्ध से 'तण्डुलवृत्तिकर्मता' का अन्वय होता है। इस प्रकार इस वाक्यांश का 'तण्लवृत्तिकर्मतानुकूल: पाक:' यह शाब्द-बोध होता है। उसके पश्चात् 'ति' प्रत्यय से 'कृति' की उपस्थिति होती है। इस कृति के साथ अनुकूलता सम्बन्ध से 'तण्डुलवृत्तिकर्मता-नुकूलपाक:' का अन्वय होता है। इस प्रकार 'तण्डुलं पचति' वाक्य का 'तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलपाकानुकूलकृति:' यह शाब्दबोध होता है। इसके बाद चैत्र पद से चैत्र पदार्थ की उपस्थिति होती है और उसके साथ आश्रयता सम्बन्ध से 'तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलपाकानुकूल कृति:' का अन्वय होता है। इस प्रकार 'चैत्र: तण्डलं पचति' इस वाक्य का यह शाब्दबोध है—तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलपाकानुकूलवर्त-मानकृत्याश्रयाभिन्नैकलववान् चैत्र:।

वक्ता का तात्पर्यार्थ ही वाक्यार्थ है। वह तात्पर्यार्थ रूप वाक्यार्थ को समझने के बाद ही शब्द का प्रयोग करता है। सभी वाक्य के शाब्दबोध में प्रथमान्त पद के अर्थ मुख्य विशेष्य होता है। प्रथमान्त पद में विद्यमान प्रथमा विभक्ति का केवल 'पदसाधुत्व अर्थ होता है।

'चैत्रेग पच्यते तण्डुल: इस वाक्य में चैत्र पद से चैत्र पदार्थ की और तृतीया विभक्ति से 'कृति' की उपस्थिति होती है। चैत्र तथा कृति इन दोनों पदार्थों का 'वृत्तित्व' सम्बन्ध है। इसलिए चैत्रेण इस वाक्यैकदेश से चैत्रवृत्तिकृति:' यह शाब्दबोध होता है। पच् धातु से 'पाक' की उपस्थिति होती है। 'पाक' तथा चैत्रवृत्तिकृति' इन दोनों का 'जन्यता' सम्बन्ध है। अत: इस वाक्यांश से 'चैत्रवृत्तिकृतिजन्य-पाक:' यह बोध होता है। कर्माख्यात से 'फल' की उपस्थिति होती

है। 'चैत्रवृत्तिकृतिजन्य पाकः' और 'फल' इन दोनों का 'जन्यता' सम्बन्ध है। अतः इस वाक्यांश से 'चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाकजन्यं फलम्' यह बोध होता है। तण्डुल पद से तण्डुल पदार्थ की उपस्थिति होती है और उसके साथ 'आश्रयत्व' संसर्ग से 'चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाकजन्य-फलम्' का अन्वय होता है। अतः चैत्रेण तण्डुलः पच्यते इस वाक्य का 'चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाकजन्यवर्तमानफलाश्रयाभिन्नैकत्ववान् तण्डुलः' यह शाब्दबोध होता है।

इसी प्रकार 'घटम्आनय' इस वाक्य के शाब्दबोध की प्रक्रिया यह है-घट पद से घट पदार्थ की एवं द्वितीया से कर्मता की उपस्थिति होती है। यहाँ कर्मता से 'उत्तरदेशसंयोग' समझा जाता है। घट पदार्थ एवं कर्मता इन दोनों का सम्बन्ध 'वृत्तित्व' है। इस तरह घटम् पद से 'घटवृत्तिकर्मत्वम्' यह बोध होता है। 'आङ्' पूर्वक 'नी' धातु से आनयन की उपस्थिति होती है। आनयन एवं घटवृत्ति-कर्मत्वम् इन दोनों का सम्बन्ध अनुकूलता है। इस तरह इस वाक्यांश से 'घटवृत्तिकर्मतानुकूलम् आनयनम्' यह बोध होता है। पुनश्च आख्यात से 'कृति' की उपस्थिति होती है और उसके साथ 'घटवृत्ति कर्मतानुकूलम् आनयनम्' इस पदार्थ का अन्वय अनुकूलता सम्बन्ध से होने के कारण 'घटवृत्तिकर्मतानुकूलानयनानुकूलकृतिः' यह शाब्द बोध होता है। इस पदार्थ का चैत्र पद से उपस्थित 'चैत्र' पदार्थ के साथ 'आश्रयता' सम्बन्ध से अन्वय किया जाता है। अतः 'चैत्रः घटम् आनयति' इस वाक्य का शाब्दबोध इस प्रकार होता है—'घटवृत्ति-कर्मतानुकूलानयनानुकूलकृतिमान् चैत्रः'

'करोति' के शाब्दबोध की प्रक्रिया यह है-'कृ' धातु से 'कृति' की और 'आख्यात' से लक्षणा द्वारा 'आश्रयत्व' की उपस्थिति होती है। इन दोनों पदार्थों का सम्बन्ध 'निरूपित्व' है। अतः 'करोति' का शाब्दबोध 'कृत्याश्रयः' है। ऐसे ही द्वेष्टि, जानाति, इच्छति, यजते इत्यादि पदों का शाब्दबोध होगा। 'यजते' इस पद में 'यज्' धातु का अर्थ देवता को उद्देश्य करके द्रव्य का त्याग करना है। त्याग भी इच्छा रूप ही है। इच्छार्थक धातुओं को सविषयक धातु कहा जाता है। इसलिए यज् धातु का भी सविषयक धातुओं के उदाहरण के

प्रसंग में उल्लेख किया गया है।

'रथोगच्छति' इस वाक्य में गम् धातु से उत्तरदेशसंयोगानुकूल-व्यापार की उपस्थिति होती है और आख्यात से लक्षणा द्वारा 'आश्र-यत्व' की उपस्थिति होती है। इन दोनों पदार्थों का सम्बन्ध 'निरूपितत्व' है। अतः रथो गच्छति इस वाक्य से 'उत्तरदेशसंयोगा-नुकूलव्यापाराश्रयात्वाश्रयो रथः' यह शाब्दबोध होता है।

'त्यजति' पद में 'त्यज्' धातु का 'पूर्वदेशविभागानुकूलक्रियारूप' अर्थ है और आख्यात का 'कृति' रूप अर्थ है। इन दोनों अर्थों का सम्बन्ध 'अनुकूलत्व' है। अतः 'त्यजति' पद का 'पूर्वदेशविभागानुकूल क्रियानुकूलकृत्याश्रय' यह शाब्दबोध होता है।

'पतति' इस पद में 'पत्' धातु से 'अधःसंयोगानुकूलक्रिया' की और आख्यात से कृति कीउपस्थिति होती है। इन दोनों पदार्थों का सम्बन्ध 'अनुकूलत्व' है। अतः 'पतति' का शाब्दबोध है–'अधः संयोगानुकूलक्रियानुकूलकृत्याश्रयः।'

'नश्यति' पद में 'नश्' धातु से 'नाश' पदार्थ की उपस्थिति होती है। आख्यात से लक्षणा द्वारा 'प्रतियोगित्व' की उपस्थिति होती है। इन दोनों पदार्थों का 'निरूपितत्व' सम्बन्ध है। अतः 'नश्यति' का शाब्दबोध है 'नाशप्रतियोगित्वाश्रयः'।

'विद्यते' पद में 'विद्' धातु से 'सत्ता की और आख्यात से लक्षणा द्वारा 'आश्रयत्व' की उपस्थिति होती है। इन दोनों पदार्थों का 'निरूपितत्व' सम्बन्ध है। अतः 'विद्यते' पद का शाब्दबोध 'सत्ताश्रय-त्वाश्रयः है।

'निद्राति' पद में नि पूर्वक द्रा धातु से 'मिथ्यामनःसंयोग' पदार्थ की उपस्थिति होती है और आख्यात से 'कृति' की। इन दोनों का 'अनुकूलता' सम्बन्ध है। इसलिये निद्राति का शाब्दबोध है— 'मिथ्यामनःसंयोगानुकूलकृत्याश्रयः।'

इस प्रकार 'चैत्रो मैत्रं तण्डुलं पाचयति' इस वाक्य में मैत्र पदोत्तर द्वितीया विभक्ति का 'वृत्तित्व' अर्थ है। 'तण्डुल' पदोत्तर द्वितीया विभक्ति से 'फल' और 'णिजन्त' पच् धातु से 'पाकानुकूलव्यापार'

और आख्यात से 'कृति' की उपस्थिति होने के कारण इस वाक्य का 'तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलमैत्रवृत्तिपाकानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमान् चैत्रः' यह शाब्दबोध होता है। जब चैत्रः मैत्रेण तण्डुलं पाचयति' यह प्रयोग होता है, तब पूर्ववत् पदार्थों का परस्पर अन्वय होता है। अब यह प्रश्न उठता है कि मैत्र पद से द्वितीया और तृतीया का विधान विकल्प से क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि मैत्र स्वव्यापार की दृष्टि से स्वयम् आश्रय होने के कारण कर्त्ता होता है और 'णिजन्त' प्रयोग में वह कर्त्ता अनभिहित होने से तृतीया विभक्ति का विधान होता है। परन्तु चैत्र के व्यापार की दृष्टि से कर्म ही होता है। क्योंकि चैत्र के व्यापार से जो फल उत्पन्न होता है उसका आश्रय मैत्र ही है। मैत्र कर्म होने के कारण मैत्र पद से द्वितीया विभक्ति का ही विधान किया जाता है।

'चैत्रेण मैत्रस्तण्डुलं पाच्यते' इस वाक्य में चैत्रपदोत्तर तृतीया विभक्ति का व्यापार अर्थ होता है। चैत्र पद से चैत्र पदार्थ की उपस्थिति होती है। इन दोनों पदार्थों का सम्बन्ध 'वृत्तित्व' है। अतः इस वाक्यांश से 'चैत्रवृत्तिव्यापार' यह बोध होता है। तण्डुलपदोत्तर द्वितीया विभक्ति से 'कर्मता' की और तण्डुल पद से तन्डुल पदार्थ की उपस्थिति होती है। इन दोनों का सम्बन्ध भी 'वृत्तिता' है। णिजन्त पच् धातु के अर्थ के साथ 'चैत्रवृत्तिव्यापार' का जन्यता सम्बन्ध से अन्वय होता है। पाच्यते में विद्यमान आख्यात का आश्रयत्व' अर्थ है। णिजन्त 'पच्' धातु से 'पाकानुकूलव्यापार' का बोध होता है। इन दोनों पदार्थों का सम्बन्ध 'निरूपितत्व' है। पुनश्च णिजन्त पच् धातु का जो अर्थ है, उसके साथ तण्डुलवृत्तिकर्मता पदार्थ' का 'अनुकूलता' संसर्ग से अन्वय होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण वाक्य से यह शाब्दबोध होता है-'चैत्रवृत्तिव्यापारजन्यतण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलव्यापाराश्रयो मैत्रः।

'पिपठिषति' का शाब्दबोध इस प्रकार किया जाता है—पठ् धातु से 'पाठ' की और सन् प्रत्यय से 'इच्छा' की उपस्थिति होती है। इन दोनों पदार्थों का सम्बन्ध विषयिता है। आख्यात से लक्षणा द्वारा 'आश्रयत्व' की उपस्थिति होती है। 'आश्रयत्व' के साथ पाठविषय-

केच्छा पदार्थ का अन्वय निरूपितत्व सम्बन्ध से होता है। अतः 'पिपठिषति' पद से 'पाठविषयकेच्छाश्रयत्वाश्रयः यह शाब्दबोध होता है।

'देवदत्तेन शास्त्रं पिपठिष्यते' इस वाक्य में देवदत्त पदोत्तर विद्यमान तृतीया विभक्ति का 'वृत्तित्व' अर्थ है। इस पदाथ के साथ देवदत्त पद से उपस्थित देवदत्त पदार्थ का 'निरूपितत्व' सम्बन्ध स अन्वय होता है। इस प्रकार 'देवदत्तेन शास्त्रं पिपठिष्यते' इस सम्पूर्ण वाक्य का शाब्दबोध है—'देवदत्तवृत्तीच्छाविषयकपाठजन्यफलशालिशास्त्रम्'

कर्ता अर्थ में विहित 'कृत्' प्रत्ययों से 'कृत्याश्रय' की उपस्थिति होती है। अतः 'अन्नस्य पक्ता' इस वाक्य में अन्न पदोत्तर षष्ठी विभक्ति का 'कर्मत्व' अर्थ है। क्योंकि इस प्रयोग में कर्म अर्थ में षष्ठी का विधान हुआ है। पच् धातु से 'पाक' की और तृच् प्रत्यय से 'कृत्याश्रय की उपस्थिति होती है। अतः 'अन्नस्य पक्ता' इस वाक्य से 'अन्नकर्मकपाकानुकूलकृत्याश्रयः' यह बोध होता है। ऐसे ही 'अन्नस्य पाचकः' इस प्रयोग में ण्वुल् प्रत्यय से कृत्याश्रय का बोध होता है।

भाव तथा कर्म अर्थ में विहित कृत् प्रत्ययों का यथाक्रम भाव तथा कर्म अर्थ बोध होता है। अतः 'चैत्रेण अन्नं पक्वम्' इस वाक्य में चैत्र पदोत्तर तृतीया से कृति की, पच् धातु से 'पाक' की, उपस्थिति होती है। इन दोनों पदार्थों का 'जन्यत्व' सम्बन्ध है। अन्न पदार्थ और पक्व पदार्थ का अभेद सम्बन्ध है। इसलिये 'चैत्रेण अन्नं पक्वम्' इस वाक्य से 'चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाकजन्यफलशालत्यभिन्नमन्नम्' यह शाब्दबोध होता है। 'चैत्रेण पक्वम्' इस वाक्य का 'चैत्रवृत्तिकृतिजन्यःपाकः' यह शाब्दबोध होता है। भाव अर्थ में विहित घञादि कृत् प्रत्ययों का साधुत्व मात्र अर्थ है। घञादि कृत् प्रत्यान्त शब्दों में जो द्विवचनादि प्रयोग होते हैं, वे द्रव्यत्व के सूचक हैं। क्योंकि कृत् प्रत्ययों द्वारा अभिहित भाव का द्रव्य जैसे स्वीकार किया जाता है।

'एधः आहर्तुं व्रजति' इस वाक्य में एधः पद से 'काष्ठ' की, द्वितीया से 'कर्मता' की, तुमुन् प्रत्यय से 'प्रकृतक्रियानिष्ठक्रियान्तरनिमित्त' की व्रज धातु से 'गमन' की और आख्यात से 'कृति' की उपस्थिति होती है। इसलिए पूर्वोक्त वाक्य का शाब्दबोध इस प्रकार किया जाता है—'एधोवृत्तिकर्मतानुकूलाहरणोद्देश्यकव्रजनानुकूलकृत्याश्रयः चैत्रः'।

द्विकर्मक विचार

'अजां ग्रामं नयति' इस वाक्य से 'अजावृत्तिकर्मतानुकूला या ग्रामविषयिणी प्राप्तिस्तदनुकूलकृत्याश्रयः' यह शाब्दबोध होता है। इस प्रकार 'नीयते अजा ग्रामं पथिकेन' इस वाक्य का शाब्दबोध है- 'पथिकनिष्ठकृतिजन्या या ग्रामविषयिणी प्राप्तिस्तज्जन्यं फलशालिनी अजा' इति।

'गां दोग्धि पयः गोपालकः' इस वाक्य का शाब्दबोध है- 'गोसंबंधिपयोवृत्तिकर्मतानुकूलदोहनानुकूलकृत्तिमान् गोपालकः'। ऐसे ही दुह्यते गौः क्षीरं गोपालकेन' इस वाक्य से 'गोपालकनिष्ठकृतिजन्यक्षीरकर्मक दोहनजन्यफलशाली गौः' का बोध होता है। 'दुह्यते गौः क्षीरं गोपालकेन' इस वाक्य में कर्माख्यात से 'अप्रधान कर्म गो' अभिहित होता है। इस अप्रधान कर्म को अकथित-कर्म भी कहा जाता है। गो प्रभृति अप्रधान कर्म का कर्मत्व विधान द्वितिया विधान के लिये किया गया है। वस्तुतः ये अप्रधान कर्म साक्षात् कर्म नहीं हैं।

'चैत्रस्य पाकः 'अद्भुतः समुद्रस्य बन्धो वानरैः' इस वाक्यद्वय का शाब्दबोध यथाक्रम इस प्रकार है—'चैत्रनिष्ठकृतिजन्यपाकः', 'वानरीयकृतिजन्यसमुद्रविषयकबन्धम् अद्भुतम्।'

कहीं-कहीं द्वितीया विभक्ति की प्रतिनिधिभूत विभक्तियों का भी कर्मत्व अर्थ होता है। इसलिये 'अधीती व्याकरणे' 'पठिती शास्त्रे' इत्यादि वाक्यों से 'व्याकरणमधीतवान्' 'शास्त्रं पठितवान्' इस प्रकार का बोध होता है। इन प्रयोगों में 'क्तस्येन्विषयस्य कर्मणि' इस वार्तिक से कर्म के स्थान पर सप्तमी का विधान किया गया है। अतः

यहाँ सप्तमी विभक्ति द्वितीया की प्रतिनिधि है। अधीती, पठिती इत्यादि शब्दों में क्तान्त अधीतादि शब्दों से इन् प्रत्यय का विधान किया गया है।

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति 'दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्' 'वालेषु चमरीं हन्ति' 'सीम्नि पुष्कलको हतः इन वाक्यों में 'निमित्ताद् कर्मसंयोगे' वार्तिक द्वारा निमित्त शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है। यहाँ निमित्त' शब्द का अभिप्राय उद्देश्य वाचक पद है। पूर्वोक्त वाक्यों में चर्मणि, दन्तयोः, बालेषु, सीम्नि इत्यादि उद्देश्य वाचक पद हैं। अर्थात् चर्मादियों के उद्देश्य से हननादि क्रिया की जाती है। अतः वार्तिक का आशय यह है कि जब निमित्त और कर्म का अवयवावयवि भाव सम्बन्ध होगा तब निमित्त वाचक पद से सप्तमी का विधान होगा। इस प्रकार 'चर्मणि द्वीपिनं हन्ति; इस वाक्य का शाब्दबोध है— 'चर्मोद्देश्यकं यत् व्याघ्रकर्मकं हननं तदनुकूलकृत्तिमान्'। ऐसे ही 'दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्' इत्यादि वाक्यों का भी शाब्दबोध होता है। पूर्वोक्त वाक्यों में 'पुष्कल' का अर्थ 'गन्धमृग' 'सीमन्' का अर्थ 'अण्डकोश' है।

'सतिसप्तमी' का सामानाधिकरण्य अर्थ होता है। सामानाधिकरण्य कहीं-कहीं कालिक और कहीं-कहीं दैशिक होता है। गोषु दुह्यमानेषु गतः, गोषु दुग्धासु गतः' इत्यादि प्रयोगों में कालिक सामानाधिकरण्य प्रतीत होता है। इसलिये इन वाक्यों से 'गोविषयकवर्तमानदोहनसमकालिकगमनानुकूलातीतकृतिमान्' का बोध होता है। दैशिकसामानाधिकरण्य का उदाहरण 'गुणकर्मान्यत्वेसति सत्त्वम् द्रव्यम् है। इस प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि गुणकर्मभेद एवं सत्व इन दोनों का समानदेश द्रव्य है। अर्थात् गुणकर्मभेद तथा सत्व इन दोनों का दैशिक सामानाधिकरण्य द्रव्य होता है। इस प्रकार 'गुण कर्मान्यत्वे सति सत्वम्' इस वाक्य का गुणकर्मप्रतियोगिको यो भेदः तत्समानदेशा सत्ता' यह शाब्दबोध होता है।

'पितृव्यघाती पुत्रो जनिता' 'वनं गतःश्वः भविता रामः' इत्यादि प्रयोगों के सम्बन्ध में कुछ शँकाएँ आ सकती हैं। ये इस प्रकार हैं– पितृव्यघाती शब्द का अर्थ 'पितृव्यं हतवान्' अर्थात् चाचा को मार

डाला। 'जनिता' का अर्थ है जनिष्यति अर्थात् जन्म होगा। अर्थात् जो अभी पैदा होगा उसने चाचा को कैसे मार डाला है ? अर्थात् भविष्यत् में उत्पन्न होनेवाले का अतीतकालिक हनन क्रिया का कर्त्ता होना असंभव है। इसके समाधान के लिये 'धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः इस सूत्र की सहायता ली गयी है। इस सूत्र का अर्थ है-'दोनों धात्वर्थों के सम्बन्ध प्रतीत होने पर गौणक्रियावाची धातुओं से भिन्नकाल में भी प्रप्यय हो सकते हैं। यहाँ यह भी समझना चाहिये कि यदि पैदा होने वाला, चाचा को अवश्य मारेगा तो यह प्रयोग साधु होगा। यहाँ अती.. काल में विहित प्रत्यय से अवश्य अर्थ की प्रतीति होती है। इसी प्रकार 'पितृव्यधाती पुत्रो जनिता इस वाक्य का अर्थ है-'भविष्यदुत्पत्तिकपुत्रोऽवश्यं पितृव्यं हनिष्यति' अर्थात् भविष्यत् में उत्पन्न होने वाला पुत्र अवश्य चाचा को मार डालेगा। ऐसे ही 'वनं गतः श्वः भविता रामः इस वाक्य का अर्थ इस प्रकार है-परदिनोत्पत्तिकोऽपि रामोऽवश्यं वनं गमिष्यति अर्थात् दूसरे दिन उत्पन्न होने वाला राम अवश्य वन जायेगा।

अथ कारक विचार

वैयाकरणों के मत में कारक का लक्षण 'क्रियानिमित्तत्वम्' अर्थात् 'क्रिया के निमित्त कारण को कारक कहा जाता है। वह कारक क्रिया के साक्षात् सम्बन्ध से तथा कहीं परम्परा सम्बन्ध से क्रिया का निमित्त बनता है। परन्तु वैयाकरणों के इस कारक लक्षण में निम्नलिखित दोष आता है—जैसे सम्प्रदानादि कारक का अनुमति प्रकाशन द्वारा क्रिया के परम्परा सम्बन्ध से निमित्त होने पर कारकत्व सिद्ध होता है, उसी प्रकार 'मैत्रस्य तण्डुलं पचति' इस वाक्य में मैत्र का भी तण्डुलादि सम्पादन द्वारा क्रिया के कारणत्व सिद्ध होने पर कारकत्व की भी प्राप्ति होती है। वैयाकरणों के कारक लक्षण में इस दोष को देखते हुए नैयायिकों ने जो कारक लक्षण दिया है वह इस प्रकार है— 'विभक्त्यर्थद्वारा क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' इस लक्षण का यह अभिप्राय है कि विभक्त्यर्थ द्वारा क्रिया के साथ अन्वित होने पर वाक्यस्थपदार्थों का कारकत्व सिद्ध होता है। नामार्थ के साथ धात्वर्थ का साक्षात् भेद सम्बन्ध से अन्वय नहीं होता, इसलिये विभक्त्यर्थ

द्वारा जब नामार्थं धात्वर्थ के साथ अन्वित होता है तभी उसका कारकत्व सिद्ध होता है। यहाँ विभक्ति से कहीं सुप् का और कहीं तिङ् का भी ग्रहण होता है। क्रियाविशेषण कारक नहीं है। उनकी पारिभाषिक कर्मसञ्ज्ञा 'क्रियाविशेषणानां कर्मत्वम् क्लीबत्वं च' न्याय से सिद्ध होती है। यद्यपि क्रियाविशेषणों का क्रियारूप फल के साथ अन्वय होता है तथापि विभक्त्यर्थ द्वारा अन्वित न होने के कारण क्रियाविशेषण का कारकत्व स्वीकृत नहीं है। क्रियाविशेषणोत्तर द्वितीया विभक्ति का पदसाधुत्व मात्र अर्थ है।

कर्तृकारक लक्षण

'क्रियानुकूलकृतिमत्त्वं कर्तृत्वम्' यह कर्तृकारक का लक्षण है। यह लक्षण कर्तृ शब्द की व्युत्पत्ति से निष्पन्न होता है। क्योंकि करणार्थक 'कृ' धातु से कर्त्ता शब्द बनता है। अचेतनों का कृतित्व के अभाव है। अतः उनका कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता हैं। उनका लाक्षणिक कर्तृत्व स्वीकृत हैं।

क्रिया लक्षण

धातु का अर्थक्रिया है। वह क्रिया दो प्रकार की होती है। (१) कर्तृस्था और (२) कर्मस्था,। गम्, पठ् प्रभृत्ति क्रियाऐं कर्तृस्था हैं, क्योंकि गमनादि क्रिया कर्ता में दिखती है। पचति प्रभृति क्रियाऐं कर्मस्था होती है। क्योंकि अधःसन्तापनत्वादि अवयवविभागादि क्रियाएँ तण्डुल में ही होती है।

कर्म का लक्षण

'परसमवेतक्रियाजन्यफलशालित्वं कर्मत्वम्'। अर्थात् कर्म वही है जो अन्य कारक में समवाय सम्बन्ध से विद्यमान क्रिया से उत्पन्न फल का आश्रय है। उदाहरण–'रामः ग्रामं गच्छति' वाक्य में ग्राम कर्म है, क्योंकि ग्राम से भिन्न 'राम' में विद्यमान गमन क्रिया (उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापार) से उत्पन्न फल (उत्तरदेशसंयोग) का आश्रय 'ग्राम' है। यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि उक्त वाक्य में 'राम' यद्यपि फल (उत्तरदेश संयोग) का आश्रय है तथापि

कर्म नहीं है, क्योंकि 'राम' में क्रिया समवाय सम्बन्ध से स्थित है। इस तरह कहीं कहीं कर्त्ता की प्राप्त कर्मसञ्ज्ञा को दूर करने के लिये कर्मलक्षण में परसमवेत (अन्य कारक में समवाय सम्बन्ध से विद्यमान) पद दिया गया है।

कर्म का भेद

कर्म तीन प्रकार का होता है – प्राप्य, निर्वर्त्य एवं विकार्य! प्राप्य कर्म का लक्षण–'धात्वर्थजन्यफलशालित्वम्'। अर्थात् धात्वर्थ क्रिया से उत्पन्न फल के आश्रय को प्राप्य कर्म कहते हैं। उदाहरणार्थ ग्रामं गच्छति' वाक्य में गमन क्रिया से उत्पन्न उत्तरदेश संयोगरूप फल का आश्रय 'ग्राम' प्राप्य कर्म है। निर्वर्त्य कर्म का लक्षण है- 'कृत्यादिसाध्यत्वेन विषयत्वम्' अर्थात् कृति (यत्न), इच्छा, द्वेष प्रभृति से जो साध्य (सम्पादित) होता है, उसे निर्वर्त्य कर्म कहते हैं। उदाहरणार्थ 'रामः घटं करोति' इस वाक्य में राम की कृति से साध्य घट निर्वर्त्य कर्म है। यहाँ राम अपनी कृति से मिट्टी पिण्ड को घट बनाता है। कृति का साक्षात् अन्वय मिट्टी पिण्ड से होने के कारण यहाँ घट पद से लक्षणा के द्वारा मिट्टी पिण्ड रूप अर्थ समझा जाता है। विकार्य कर्म का लक्षण 'प्रकृत्युच्छेदजनितरूपान्तरवत्त्वं विकार्यम्'। अर्थात् प्रकृति के उच्छेद से (परिणाम से, नष्ट होने पर) जो पदार्थ दूसरे रूप में आता है, उसे विकार्य कर्म कहते हैं। उदाहरणार्थ 'दुग्धं दधि करोति' इस वाक्य में दूध (प्रकृति) के परिणाम से जो दधि सामने आया, उसे विकार्य कर्म कहते हैं। यहाँ दधि की ही कर्म संज्ञा होती है, न कि दुग्ध की। 'दधि' 'दुग्ध' से अभिन्न है, इस विषय को प्रतिपादित करने के लिये 'दुग्ध' में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है। वास्तविक रूप से तो यहाँ 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति नहीं है।

इस प्रकार यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि जैसे 'अजां ग्रामं नयति' वाक्य में 'अजा एवं ग्राम के रूप में दो कर्म उपस्थित हैं, उस प्रकार 'दुग्धं दधि करोति' वाक्य में 'दुग्ध' एवं 'दधि' के रूप में दो कर्म नहीं है, परन्तु 'दधि' एकमात्र कर्म है। इन दोनों वाक्यों में यह भेद है कि प्रथम वाक्य में 'अजा' एवं 'ग्राम' दोनों परस्पर भिन्न-भिन्न हैं और द्वितीया वाक्य में दधि दूध का रूपान्तर मात्र है। दूध प्रकृति

है, जिसका विकार दधि के रूप में हुआ है। अतः दूध' एवं 'दधि' दोनों अलग-अलग कर्म नहीं हो सकते।

इन तीन प्रकार के कर्मों में से प्राप्य कर्म मुख्य है और निर्वर्त्य एवं विकार्य कर्म गौण हैं।

इस संदर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि जैसे 'घटं करोति' वाक्य में कृति का साध्य होने के कारण घट को निर्वर्त्य कर्म कहते हैं, उसी प्रकार 'दधि करोति' वाक्य में कृति के साध्य होने के कारण 'दधि' निर्वर्त्य कर्म है, परन्तु 'दुग्धं दधि करोति' वाक्य में प्रकृति एवं विकृति दोनों की विवक्षा के कारण 'दधि' विकार्य कर्म होता है।

करण का लक्षण

'साधकतमं करणम्' यह करणसंज्ञाविधायक पाणिनीय सूत्र है। दूसरे कर्मादि कारकों के व्यापार को उत्पन्न न करने वाले क्रिया के कारण को करण कहते हैं। अर्थात् कर्मादिकारक जो व्यापार करते हैं, उससे भिन्न अपने व्यापार से क्रिया के सम्पादन में जो कारण बनता है, उसे करण कहते हैं। उदाहरणार्थ 'दात्रेण धान्यं छिन्नति' वाक्य में दात्र का व्यापार दूसरे धान्यादिकारकों के व्यापार से भिन्न है और छेदन क्रिया के सम्पादन में 'दात्र' कारण भी है। इसलिये दात्र को पूर्वोक्त वाक्य में करण कारक कहा जाता है। यह 'करणत्व,' तृतीया विभक्ति का अर्थ है। 'विद्यया यशः' प्रभृति वाक्यों में 'विद्या' को करण कारक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यहाँ विद्या क्रिया के साथ अन्वित नहीं है। इसलिये 'विद्यया' में विद्यमान तृतीया विभक्ति का करणत्व अर्थ नहीं होता है, इस तृतीया विभक्ति का 'हेतुत्व' अर्थ है। इसी प्रकार धूमात् अग्निमान्' 'कृतकत्वात् अनित्यतावान्' इत्यादि वाक्यों में भी पञ्चमी विभक्ति का अर्थ -हेतुत्व' है। यहाँ हेतुत्व से 'ज्ञाप्यत्व' अथवा 'बोध्यत्व' रूप अर्थ समझा जाता है। अतः धूमात् अग्निमान्' वाक्य से 'धूमज्ञानज्ञाप्यवह्निमदभिन्नः पर्वतः' यह शाब्द-बोध होता है। पूर्वोक्त वाक्य में धूमपद से लक्षणा द्वारा 'धूमज्ञान' अर्थ समझा जाता है। इसी प्रकार 'कृतकत्वात् अनित्यता' वाक्य से भी कार्यत्वज्ञानज्ञाप्यानित्यत्ववदभिन्नः' यह शाब्दबोध होता है।

सम्प्रदान का लक्षण

सम्प्रदान कारक के विधान करने वाले अनेक पाणिनीय सूत्र है। अलग-अलग सूत्रों से विहित सम्प्रदान के अलग-अलग अर्थ होते हैं। 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् इस पाणिनि के सूत्र से सम्प्रदान का विधान होता है। इस सम्प्रदान का अर्थ है 'उद्देश्यत्व'। प्रधान क्रिया के करणीभूत कर्म से फलभाक् होने के कारण सम्प्रदान को उद्देश्य कहा जाता है। उदाहरण—'विप्राय गां ददाति' इस वाक्य में दानक्रिया के करणीभूत गोरुपकर्म से स्वामित्व रुपक फल के भोक्ता को सम्प्रदान कहते हैं।

'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' सूत्र से विहित सम्प्रदान का 'उद्देश्यत्व' अर्थ है। अतएव 'विप्राय गां ददाति' वाक्य से 'विप्रोद्देश्यकं गोवृत्ति यद् स्वत्वं गोनिरुपितं स्वामित्वं वा तज्जनको यस्त्यागस्तदाश्रय' यह बोध होता है। 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' सूत्र से विहित सम्प्रदान का 'सम्बन्धत्व' अर्थ है। इसलिए 'नारदाय रोचते कलहः' वाक्य से 'नारदसम्बन्धिनी या रुचिस्तद्विषयः कलहः' यह बोध होता है। श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमान सूत्र से विहित सम्प्रदान का 'विषयत्व' अर्थ होता है। अतः 'नृपाय श्लाघते वली' वाक्य से 'नृपविषयकात्मज्ञापनेच्छाविषयीभूतःकथनाश्रयोवली' यह शाब्दबोध होता है। सूत्र में स्थित 'ज्ञीप्स्यमान—पद का 'आत्मज्ञापनेच्छाविषयीभूत' अर्थ है। 'धारेरुत्तमर्णः' सूत्र से विहित सम्प्रदान का 'सम्बन्धित्व' अर्थ है। अतएव 'विप्राय शतं धारयति शूद्रः' वाक्य से विप्रसम्बन्धिशतसंख्याविशिष्टद्रव्यकर्मकं यद् ऋणग्रहणं तदाश्रयः शूद्रः' यह बोध होता है। 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' सूत्र से विहित सम्प्रदान का 'कर्मत्व' अर्थ है। इसलिए 'देवदत्ताय क्रुध्यति' वाक्य से 'देवदत्तकर्मकक्रोधाश्रय' यह बोध होता है। 'स्पृहेरीप्सितः' सूत्र से विहित सम्प्रदान का 'ईप्सितकर्मत्व' अर्थ है। अतएव 'पुष्पाय स्पृहयति' वाक्य से 'पुष्पविषयकस्पृहाश्रय' यह बोध होता है।

अपादान का लक्षण

अपादान कारक का स्वरूप 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' सूत्र से ज्ञात

होता है। विभाग होने पर विभाग की जनिका जो क्रिया है उससे रहित कारक को अपादान कहा जाता है। नैयायिकों के मत में 'पतनक्रियाजन्यविभागाश्रयत्वमपादानत्वम्' अर्थात् 'पतन' क्रिया के कारण जो विभाग होता है, उसके आश्रय को अपादान कहा जाता है।

वह अपादान दो प्रकार का है—(i) चल एवं (ii) अचल। 'वृक्षात् पर्णं पतति' वाक्य में वृक्ष अपादान है और वह अचल है। 'धावतोऽश्वात् पतति अश्ववाहकः' वाक्य में 'अश्व' अपादान है एवं चल है। इन वाक्यों में पञ्चमी का 'अपादानत्व' अर्थ है। अपादान से 'अवधित्व' अर्थ समझा जाता है। इसलिए 'वृक्षात् पर्णं पतति' वाक्य से वृक्षावधिकाधःसंयोगानुकूला या क्रिया तद्वद् पर्णम्' यह बोध होता है। उसी प्रकार 'धावतोऽश्वात् पतितोऽश्ववाहकः' वाक्य से 'अश्वावधिकाधःसंयोगानुकूला या क्रिया तद्वान् अश्ववाहकः' यह बोध होता है। यहां अश्ववाह की पतनक्रिया, अश्व तथा अश्ववाहक के विभाग का जनक है, उसी क्रिया का अवधिभूत कारक 'अश्व' है। यह 'अश्व' भी विभाग के जनक के रूप में विद्यमान पतन क्रिया का आश्रय नहीं है। अतः 'अश्व' की अपादान संज्ञा सिद्ध होती है।

'हिमवतो गङ्गा प्रभवति', 'बल्मीकात् प्रभवति धनुः' इन वाक्यों में 'भुवः प्रभवः' सूत्र से पञ्चमी का विधान किया गया है। सूत्र में 'प्रभव.' शब्द का अर्थ 'आद्य प्रकृति' है। यहाँ 'अपादानत्व' का 'आद्य प्रकृति' अर्थ है। अतः 'हिमवतो गङ्गा प्रभवति' का शाब्द बोध यह है-'हिमवत्वावच्छिन्नाद्यप्रकृतिकोत्पत्तिमती गङ्गा'।

'सामग्रीतः फलं जायते' वाक्य में पञ्चमी का 'हेतुत्व' अर्थ है। 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' सूत्र से यहां पञ्चमी का विधान हुआ है। सूत्र में प्रकृति से 'फलोत्पत्युन्मुखीभूतकारणकलाप' का बोध होता है। इसलिए उस वाक्य से 'सामग्रीहेतुकोत्त्पत्तिमत् फलम्' यह बोध होता है। 'अध्ययनात् पराजयते छात्रः' इत्यादि वाक्य में पञ्चमी का 'विषयत्व' अर्थ है। 'पराजेरसोढः' सूत्र से यहाँ परा पूर्वक जि धातु के प्रयोग से असाध्य अर्थ 'अध्ययन' की अपादान संज्ञा सिद्ध होती है। सूत्र में 'असोढ़त्व' का अर्थ 'असाध्यत्व' है। पराजय पद से 'निवृति'

अर्थ का बोध होता है। इस प्रकार 'अध्ययनात् पराजयते छात्रः' वाक्य का शाब्दबोध—'अध्ययनविषयकनिवृतिमान् छात्रः' बोध होता है। 'शत्रून् पराजयते' इस वाक्य में 'पराजयते' का अर्थ 'पराभवति' होता है। यहाँ 'पराजयते' से निवृत्ति अर्थ का बोध नहीं होता है। 'शत्रु' पराभव का विषय है, असाध्य अर्थ नहीं, अतः इस वाक्य में 'परा' उपसर्ग पूर्वक 'जि' धातु के प्रयोग होने पर भी 'शत्रु' शब्द से पञ्चमी का विधान नहीं होता है।

'कूपादन्धं वारयति' वाक्य में पञ्चमी का 'अवधित्व' अर्थ है। यहाँ 'वारणार्थानामीप्सितः' सूत्र से वारणार्थक धातु के प्रयोग होने के कारण वारणकर्त्ता का ईप्सित पदार्थ 'कूप' को अपादान कहते हैं। इस उदाहरण में वारणकर्त्ता को 'कूप' ईप्सित और 'अन्ध' ईप्सिततम है। इसलिए 'अन्ध' से द्वितीया विभक्ति का विधान होता है और इस वाक्य का शाब्दबोध है – 'कूपावधिकमन्धकर्मकं यन्निवारणं तदनुकूल-व्यापारवान्' यह बोध होता है।

'चौराद् बिभेति', 'व्याघ्रादपत्रस्तः', 'दस्युभ्योरक्षितः' इत्यादि वाक्यों में पञ्चमी का 'हेतुत्व' अर्थ है। इन वाक्यों में 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' सूत्र से यथाक्रम चोर, व्याघ्र और दस्यु शब्द में पञ्चमी का विधान हुआ है। इस सूत्र का यह अर्थ है कि 'भयार्थक' तथा 'त्राणार्थक' धातुओं के प्रयोग होने पर 'भय' तथा 'त्राण' का जो हेतु होता है उसका अपादान होता है। 'हेतौ' सूत्र से विहित तृतीया के वारण के लिए इस सूत्र से अपादान का विधान कर 'अपादानेपञ्चमी' सूत्र से पञ्चमी का विधान किया गया है। अतः 'चौराद्बिभेति' वाक्य का शाब्दबोध है-चौरहेतुकभयाश्रयः।

'उपाध्यायात् अन्तर्धते छात्रः', 'उपाध्यायान्निलीयते छात्रः' इन वाक्यों में पञ्चमी का हेतुत्व' अर्थ है। यहाँ भी 'अपादान' का विधान, हेतु तृतीया के वारण के लिए किया गया है। इन दोनों वाक्यों में 'अन्तर्धौयेनादर्शनमिच्छति' इस सूत्र से 'उपाध्याय' की अपादान संज्ञा होती है। आत्मगोपन की इच्छा रखते हुए जब किसी से छिपा जाता है तब जिससे छिपा जाता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। इस प्रकार 'उपाध्यायात् अन्तर्धते छात्रः' वाक्य का शाब्द-

बोध इस प्रकार होगा—'उपाध्यायहेतुकं यत् आत्मसंगोपनं तद्विषयिणी या इच्छा तदाश्रयः छात्रः'।

'उपाध्यायादधीते' इस वाक्य में भी पञ्चमी का अर्थ 'हेतुत्व है। 'आख्यातोपयोगे' सूत्र से यहाँ पञ्चमी का विधान हुआ है। इस सूत्र का अर्थ यह है कि यदि नियमपूर्वक विद्या का अध्ययन किया जाता है तो जिस प्रवक्ता से विद्या ग्रहण की जाती है, उसकी अपादान-संज्ञा होती है। यहां भी तृतीया के वारण के लिए अपादान का विधान किया गया है। इस प्रकार 'उपाध्यायात् अधीते' वाक्य का शाब्दबोध होगा 'उपाध्यायहेतुकं यन्नियमपूर्वकविद्याग्रहणंतदनुकूल कृतिमान्।

अधिकरण का लक्षण

'आधारोऽधिकरणं' इस पाणिनीय सूत्र से अधिकरण संज्ञा का विधान होता है। आधार का अर्थ है 'आश्रय'। नैयायिकों के मत में अधिकरण का क्षण इस प्रकार है-'कर्तृकर्मान्यतरद्वारा क्रियान्वयित्वे सति क्रियोपकारकत्वमधिकरणत्वम्'। यहां 'अन्यतर' पद का आशय है—कर्तृ द्वारा अथवा कर्म द्वारा जो क्रियान्वयी होता है, उसे अधिकरण कहते हैं। 'उपकारकत्व' पद से 'निष्पादकत्व' का बोध होता है। इस प्रकार नैयायिकों के अधिकरण के लक्षण का आशय यह है कि कर्ता अथवा कर्म के द्वारा क्रियान्वयी होते हुए क्रिया का जो निष्पादक बनता है, वह अधिकरण कहलाता है। 'गृहेस्थित्वा स्थाल्यामोदनं पचति' वाक्य में 'गृह' अधिकरण है और वह कर्ता के द्वारा पाक क्रियान्वयी तथा पाक क्रिया का निष्पादक होता है। 'स्थाली' ओदन रुप 'कर्म' के द्वारा क्रिया का अन्वयी तथा क्रिया का निष्पादक बनता है। इसलिए दोनों की अधिकरण संज्ञा होने पर वहां सप्तमी का विधान होता है।

समासपद

समासत्व का निरुपण करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि समासत्व अखण्डोपाधि विशेष है। यदि 'कर्मधारयाद्यन्यतमत्वं समासत्वं' कहेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष प्रसक्त होगा। क्योंकि समासत्व का ज्ञान कर्म-

धारयतादि के ज्ञान पर आश्रित होगा और कर्मधारयतादि का ज्ञान समासत्व के ज्ञान की अपेक्षा करेगा। इसलिए परस्परापेक्ष रूप अन्योन्याश्रय दोष प्रसक्त होगा। इसलिए समासत्व को अखण्डोपाधि विशेष मानना ही उचित होगा। नैयायिक समास में शक्ति अथवा लक्षणा को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मतानुसार कहीं समास के पूर्वपद में, कहीं उत्तरपद में, कहीं उभयपद में लक्षणा का स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार समासपद से अर्थबोध होता है। इस स्थिति में समास विधान का क्या औचित्य है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—पद के संस्कार के लिए समास का विधान किया गया है। यहां यह भी कहना उचित नहीं है कि जैसे—व्यासकाल में अर्थबोध का कारण तत्तत्पद तथा पदार्थों की उपस्थिति मानी जाती है, उसी तरह समासपद से बोध्यमान तत्सजातीय अर्थ का भी कारण व्यासवाक्य के उन पदों तथा पदार्थों की उपस्थिति ही है, अतः पूर्वपद, उत्तरपद तथा उभयपद में लक्षणा नहीं माननी पड़ेगी। इससे लाघव होगा। क्योंकि व्यासकाल में जो पद है वह व्यास वाक्य का अवयव है और समासकाल में जो पद है वह समास का अवयव है। समास और व्यास वाक्य ये दोनों परस्पर अलग-अलग हैं। अतः व्यास वाक्य के पद तथा पदार्थ समासपद के अर्थबोध के कारण नहीं बन पायेंगे। पुनश्च समास में अलग शक्ति की कल्पना करना अनुचित होगा, क्योंकि ऐसा करने पर गौरव होता है।

कर्मधारय

कर्मधारय समास का स्वरूप समानविभक्तिमत्पदप्रकृतिकत्वे सति द्विगुभिन्नत्वे सति अभेदबोधकत्वं कर्मधारयत्वम्। इसका अभिप्राय यह है कि कर्मधारय समास वह है जिसके समस्यमान पदों में समान विभक्ति होने पर भी द्विगु से भिन्न होता है। यहां समस्यमान पदों में समान विभक्ति होने के कारण अभेदान्वय भी होता है। जैसे 'नीलोत्पलम्' इस उदाहरण में नील पद से नीलरूप विशिष्ट वस्तु की और उत्पल पद से उत्पल सामान्य की उपस्थिति होती है और इन दोनों पदार्थों का अभेद सम्बन्ध होने से नीलोत्पल शब्द का शाब्द बोध–'नीलाभिन्नम् उत्पलम्' होता है। अतः यह प्रसिद्धि है कि कर्म-

धारय में शक्ति तथा लक्षणा दोनों का आश्रय नहीं किया जाता है। क्योंकि समान विभक्तिकपदों के अर्थों का अभेद सम्बन्ध होता है, अतः शाब्दबोध अपने आप हो जाता है। अतएव 'निषादस्थपतिं याजयेत्' इस वाक्य के 'निषादस्थपति' पद में षष्ठी तत्पुरुष अथवा बहुव्रीहि समास को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अपितु इस पद में कर्मधारय समास ही होगा। क्योंकि यदि बहुव्रीहि अथवा तत्पुरुष का स्वीकार किया जायेगा तर्हि पूर्वपद में अथवा उत्तरपद में लक्षणा करनी पड़ेगी किन्तु कर्मधारय स्वीकार करने से शक्ति अथवा लक्षणा को स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार 'निषादस्थपतिं याजयेत्' इस वाक्य का निषादात्मकस्थपतियाजनम् यह बोध होता है। यहां यह शंका हो सकती है कि-निषाद शंकर जाति विशेष होने के कारण उसका 'याजन' अधिकार असम्भव है। इस शंका का समाधान इस तरह किया जाता है कि 'निषाद' शंकर जाति विशेष होते हुए भी उसको मन्त्र पठन का अधिकार प्राप्त है।

तत्पुरुष

तत्पुरुष का लक्षण इस प्रकार है—'असमानविभक्तिमत्पदकत्वे सति अभेदबोधकत्वं तत्पुरुषत्वम्'। अर्थात् तत्पुरुष समास उसी को कहते हैं जहां समस्यमान पदों में समान बिभक्ति न होने पर भी अभेद बोध होता है। 'राजपुरुष' यह पद इस समास का उदाहरण है। इसमें 'राज्ञः' 'पुरुषः' ये दो पद समान विभक्तिक नहीं हैं, यहां पूर्व पद में लक्षणा से 'राजसम्बन्धी' रूप अर्थ का बोध होता है, इसका पुरुष अर्थ के साथ अभेद सम्बन्ध होने पर 'राजसम्बन्ध्यभिन्नः पुरुषः' यह बोध होता है।

यहां यह प्रश्न किया जाता है कि 'राजपुरुष' पद के पुरुष पद में लक्षणा के द्वारा 'राजसम्बन्धी' अर्थ को समझकर राजपद को तात्पर्य ग्राहक मानने पर भी 'राजसम्बन्ध्यभिन्नपुरुष' यह बोध हो जाता है, इस स्थिति में पूर्वपद में लक्षणा मानकर अभेदान्वय करने की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ऐसा करने पर उत्तर पदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः' सिद्धान्त का विरोध होगा। क्योंकि जब पूर्व पदार्थ केवल तात्पर्य ग्राहक होगा, तब गौण पद के अभाव के कारण

उत्तरपदार्थ का प्रधानत्व सिद्ध नहीं हो पायेगा। अतः उत्तरपद में लक्षणा अस्वीकार्य है।

'राजपुरुषः' वाक्य का शाब्दबोध इस प्रकार भी किया जा सकता है—राज पद से राजपदार्थ की, षष्ठी से सम्बन्ध की और पुरुष से पुरुष पदार्थ की उपस्थिति होती है। षष्ठयर्थ तथा पुरुषपदार्थ का आश्रयत्व सम्बन्ध होने के कारण सम्पूर्ण वाक्य से 'राजसम्बन्धाश्रय-पुरुष' का बोध होता है :

द्विगु

द्विगु समास उसे कहते हैं जहां पूर्वपद संख्या होती है और पूर्व एवं उत्तरपद समानविभक्तिक होते हैं। अतः यहां पूर्वपदार्थ का उत्तरपदार्थ के साथ अभेदान्वय होता है, जैसे कि-'पञ्चाङ्गुलम्' इस पद का 'पञ्चानाम् अङ्गुलानाम् समाहार' यह विग्रह होता है और इससे 'पाँच अङ्गुलों के समाहार' का बोध होता है। यहां अङ्गुलपद से लक्षणा द्वारा पाँच अङ्गुलों के समाहार का बोध होता है और पञ्च' पद तात्पर्यग्राहक होता है।

बहुव्रीहि

'नञ्तत्पुरुषभिन्नत्वे सति लाक्षणिकोत्तरपदवत्त्वम् बहुव्रीहित्वम्' यह बहुव्रीहि का लक्षण है। इसका अर्थ यह है कि-बहुव्रीहि समास उसे कहते हैं जिसके उत्तरपद में लक्षणा होती है, परन्तु जो नञ्-तत्पुरुष से भिन्न होता है।

नञ् तत्पुरुष में भी उत्तरपद में लक्षणा होती है। 'अब्राह्मण' इस नञ् तत्पुरुष के उदाहरण में उत्तरपद ब्राह्मणपद है, जिसमें 'ब्राह्मणेतर' अर्थ में लक्षणा की जाती है और नञ् पद को तात्पर्य-ग्राहक माना जाता है। अतः 'अब्राह्मण' पद का 'ब्राह्मणेतर' अर्थ होता है। इस प्रकार नञ् तत्पुरुष में भी उत्तरपद में लक्षणा होती है, इसलिए बहुव्रीहि के लक्षण में 'नञ् तत्पुरुषभिन्नत्वेसति' यह विशेषण दिया गया है।

'चित्रगुः' इस उदाहरण में लक्षणा द्वारा 'गो' पद से 'गोस्वामी' की प्रतीति होती है, और चित्र पदार्थ का पदार्थैकदेश 'गो' के साथ

अभेदान्वय होता है। अतः 'चित्रगुः' पद से 'चित्राभिन्नगोस्वामी' का बोध होता है। 'पदार्थ, पदार्थ के साथ अन्वित होता है न तु पदार्थैकदेश के साथ' इस सिद्धान्त के अनुरोध से उपर्युक्त शाब्दबोध उचित न होने के कारण, दूसरा शाब्दबोध दिया गया है–'गो' पद से चित्राभिन्न'गोस्वामी' का बोध लक्षणा से होता है और चित्रपद तात्पर्य बोधक होता है

यहां यह भी नहीं कहा जा सकता है कि दोनों पदों में लक्षणा हो, क्योंकि शक्तपद के समभिव्याहार होने पर ही दूसरे पद में लक्षणा स्वीकृत होती है। पुनश्च पूर्वपद में लक्षणा स्वीकृत नहीं की जा सकती है, क्योंकि उत्तरपदार्थ का पूर्वपद के लक्ष्यार्थ के साथ अन्वय नहीं होता है। उत्तरपद को तात्पर्यग्राहक भी नहीं माना जा सकता क्योंकि पूर्वपद सम्पूर्णार्थ का उपस्थापक नहीं बन पाता है।

द्वन्द्व

द्वन्द्व समास का लक्षण—'पदजन्यप्रतिपत्तिविषयबोधकत्वे सति समानविभक्तिसप्तकप्रकृतिकत्वं द्वन्द्वत्वम्' अर्थात् द्वन्द्व समास उसे कहते हैं जिसमें समस्त समस्यमान पद समानविभक्तिक होते हैं और समस्यमान पदों के अर्थों का बोध होता है।

यह द्वन्द्व समास 'च'कार के अर्थ में होता है। 'भेद' चकार का अर्थ है। इस प्रकार भेद के अर्थ में द्वन्द्व समास होता है। पदार्थभेद एवं पदार्थतावच्छेदकभेद दोनों ही भेदों में द्वन्द्व समास होता है। अतएव 'घटाः' में एकशेष और 'एकदन्त-हेरम्ब-लम्बोदराः' में द्वन्द्व समास सिद्ध होता है। 'घटाः' प्रयोग में 'घट घट घट जस्' इस स्थिति में 'सरुपाणामेकशेष एकविभक्तौ' सूत्र के द्वारा एकशेष होकर 'घटाः' पद बनता है। 'एकशेष' द्वन्द्व का अपवाद कहलाता है। उत्सर्ग और अपवाद का विषय समान होने के कारण द्वन्द्व और एकशेष का भी विषय समान होता है। अतः एकशेष भी भेद के अर्थ में ही होता है। इस प्रकार 'घटाः' में यद्यपि घटत्वरूपक पदार्थतावच्छेदक समान होने के कारण यहां पर पदार्थतावच्छेदक भिन्न नहीं है, तथापि प्रत्येक घट दूसरे घट से भिन्न है, अतः यहां पदार्थ भेद है। 'एकदन्त-हेरम्ब-लम्बोदराः' प्रयोग में एकदन्त पद का पदार्थ

'एकदन्त' और पदार्थतावच्छेदक 'एकदन्तत्व', हेरम्बपद का पदार्थ 'हेरम्ब और पदार्थतावच्छेदक हेरम्बत्व' एवं लम्बोदर पद का पदार्थ 'लम्बोदर' और पदार्थतावच्छेदक 'लम्बोदरत्व' है। इस प्रकार यहां पदार्थ एक होते हुए भी पदार्थतावच्छेदक भिन्न होने के कारण द्वन्द्व समास हुआ है। एवं पदार्थभेद के अर्थ में 'घटाः' में द्वन्द्वाप वाद एकशेष होता है, जबकि वदार्थतावच्छेदक भिन्न होने के कारण 'एकदन्त-हेरम्ब-लम्बोदराः' प्रयोग में द्वन्द्व समास सिद्ध होता है

इतरेतर और समाहार भेद से द्वन्द्व दो प्रकार का होता है। इन दोनों प्रकारों में साहित्य की प्रतीति होती है। इतरेतर द्वन्द्व में साहित्य विशेष्यरूप में भासमान होता है, जबकि समाहार द्वन्द्व में साहित्य विशेषणरूप में भान होता है। 'एकक्रियान्वयित्व' को यहां साहित्य कहा जाता है। अर्थात् सभी समस्यमान पदार्थ यदि एक क्रिया के साथ अन्वित होते हैं तो उन सभी पदार्थों का साहित्य माना जाता है। 'धवखदिरपलाशान्छिन्धि' वाक्य में धव, खदिर पलाश पदार्थ, छेदन क्रिया के साथ अन्वित होते हैं। अतएव यहां इन पदार्थों के साहित्य की प्रतीति होती है। अतः इस वाक्य का शाब्दबोध इस प्रकार होता है-'धवखदिरपलाशप्रतियोगिकं यत् साहित्यं तन्निरूपितं (=तत्समानाधिकरणं) यदवयवविभागरुपफलं तज्जनिका या छेदनक्रिया तदनुकूलकृतिमान्त्वम्'। इस शाब्दबोध में साहित्य विशेष्यरूप में और धवखदिरपलाश विशेषणरूप में प्रतीत होता है। 'धवखदिरपलाशंछिन्धि' वाक्य के धवखदिरपलाशम्' पद में समाहार द्वन्द्व है। अतः इस वाक्य के शाब्दबोध में साहित्य विशेषण होगा और धवखदिरपलाश विशेष्य होंगे। इसका शाब्दबोध इस प्रकार है-'साहित्याश्रयधवखदिरपलाशवृत्ति यत् फलं तज्जनिका या क्रिया तदनुकूलकृतिमांस्त्वम्'।

दूसरे मत का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि इतरेतर द्वन्द्व में उपस्थित पदार्थ में द्वित्व-बहुत्व की प्रतीति होगी, जबकि समाहार द्वन्द्व में उपस्थित पदार्थ में एकत्व की प्रतीति होगी।

अव्ययीभाव

अव्ययीभाव का लक्षण इस प्रकार है-'समासग्रस्तत्वे सति नाना-

विभक्तिषु एकरूपतावदव्ययत्वम् अव्ययीभावत्वम्' अर्थात् अव्ययीभाव समास उसे कहते हैं जिसका नाना विभक्तियों में एक ही रूप हो और जो समास होते हुए भी अव्यय हो। इस समास का उदाहरण उपकुम्भम् है, जिसका शाब्दबोध इस प्रकार है—'कुम्भावधिकान्यदेशसंयोगी'। यह 'उपकुम्भम्' पद अव्यय होने के कारण नाना विभक्तियों में एक ही रूप में प्रयुक्त होता है।

निर्द्धारण

जाति, गुण अथवा क्रिया शब्द के द्वारा समुदाय से एक को पृथक् करना ही निर्द्धारण है। जिसको समुदाय से जात्यादि शब्दों द्वारा पृथक् किया जाता है वह समुदाय स्थित अन्य अवयवों की अपेक्षा विलक्षणधर्मवान् होता है। इसके क्रमशः उदाहरण इस प्रकार है—

(१) जातिशब्द के द्वारा निर्द्धारण—

'नराणां क्षत्रियः शूरतमः'। यहां 'क्षत्रिय' जाति शब्द है, जिसके द्वारा नरसमुदाय से क्षत्रियों को पृथक् किया गया। यहां यह कहा गया है कि क्षत्रियों में जैसा शूरत्व पाया जाता है, वैसा शूरत्व अन्य नरों में उपलब्ध नहीं है।

(२) गुण शब्द से निर्द्धारण—

'गवां कृष्णा सम्पन्ना क्षीरतमा'। यहां 'कृष्णा' गुणशब्द है, जिसके द्वारा गोसमुदाय से कृष्णवर्ण विशिष्ट गौ को पृथक् किया गया है। यहां कृष्णवर्ण विशिष्ट गौ का 'सम्पन्नक्षीरतमत्व' (सर्वाधिक दुधवाली) रूप विलक्षणधर्म कहा गया है।

(३) क्रिया शब्द द्वारा निर्द्धारण—

'अध्वगानां रथारुढ़ाः शीघ्रगाः'। यहां 'रथारुढ़' शब्द क्रिया शब्द है, जिसके द्वारा अध्वगसमुदाय से रथारूढ़ों को पृथक् किया गया है। इसमें रथारूढ़ों का शीघ्रगत्वरूप विलक्षणधर्म कहा गया है।

एवार्थ विचार

'एव' का अर्थ है 'व्यवच्छेद'। व्यवच्छेद का अर्थ है-'अभाव'।

यह 'एव' पद, क्रिया, विशेषण एवं विशेष्य के साथ प्रयुक्त होने पर भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवच्छेद को प्रकट करता है। जब क्रिया के साथ इसका प्रयोग किया जाता है, तब 'अत्यन्तायोगव्यच्छेद का, विशेषण के साथ प्रयुक्त होने पर 'अयोगव्यवच्छेद' का एवं विशेष्य के साथ प्रयुक्त होने पर 'अन्ययोगव्यवच्छेद' का अर्थ बोध कराता है अत्यन्तायोगव्यवच्छेद का अर्थ-अत्यन्त असम्बन्ध (अयोग) का अभाव ('व्यवच्छेद) है। अर्थात् कहीं सम्बन्ध है भी और कहीं नहीं भी है। जैसे कि 'नीलं सरोजं भवत्येव' वाक्य में 'एव' पद 'भवति' क्रिया के साथ प्रयुक्त है। अतः इसका अर्थ होगा 'अत्यन्त असम्बन्ध का अभाव'। इसका आशय यह है कि सरोज में नीलरूप का अत्यन्त असम्बन्ध का अभाव है। अर्थात् कहीं सरोज नील है और कहीं अनील भी है। 'अयोगव्यवच्छेद' का अर्थ है 'असम्बन्ध का अभाव'। दो निषेध विधि को दर्शाते हैं। अतः 'असम्बन्ध का अभाव' का मतलब है सम्बन्ध। जैसे कि 'शङ्खः पाण्डुर एव' वाक्य में पाण्डुरत्व का शङ्ख के साथ सम्बन्ध निश्चित रूप से रहता है। अतएव 'शङ्खः पाण्डुर एव' वाक्य का शाब्दबोध होगा-'शङ्खत्वव्यापकत्वविशिष्ट-स्वरूपसम्बन्धेन पाण्डुरत्वाव्यवच्छेदप्रकारकशखत्वावच्छिन्नविशेष्यको बोधः'। उसी प्रकार 'अन्ययोगव्यवच्छेद' का अर्थ है 'निर्दिष्ट विशेष्य से भिन्न पदार्थ में निर्दिष्ट विशेषण पदार्थ के सम्बन्ध का अभाव'। जैसे कि 'पार्थ एवं धनुर्धरः' वाक्य में पार्थ विशेष्य पद है और उसका विशेषण धनुर्धर है। यहां लक्षणावृत्ति द्वारा धनुर्धर पद से 'प्रकृष्ट धनुर्धर' अर्थ की प्रतीति होती है। पार्थ में ही प्रकृष्ट धनुर्धरत्व है पार्थ से भिन्न किसी में भी प्रकृष्ट धनुर्धरत्व नहीं है। अर्थात् पार्थ जैसा प्रकृष्ट धनुर्धर और कोई नहीं है। अतः पूर्वोक्त वाक्य का शाब्दबोध इस प्रकार है—"पार्थत्वविशिष्टविशेष्यकपार्थत्वव्याप्य-प्रकृष्टधनुर्धरत्वसमानाधिकरणविशेषणसम्बन्धेन धनुर्धरान्ययोगव्यव-च्छेदप्रकारको बोधः"।

सर्वनामपद शक्ति विचार

नैयायिकों के मतानुसार सर्वनाम पदों का अर्थ घट-पटादि पदार्थ है। शक्यतावच्छेदक घटत्व-पटत्व-प्रभृति है। अतः इनके मत में

सर्वनाम पद नानार्थक होते है। प्रकरणादि द्वारा तात्पर्यार्थ का बोध होता है।

इव शब्दार्थ विचार

इव शब्दार्थ के निरूपण के प्रसङ्ग में निम्नलिखित दो वाक्यों में इवार्थ का निरूपण किया जाता है। 'चन्द्र इव मुखम्' इस वाक्य में चन्द्र पद चन्द्रार्थपरक है, इव पद का अर्थ है 'सादृश्य', चन्द्रपदार्थं तथा सादृश्य का संसर्ग है 'प्रतियोगित्व'। अतएव चन्द्र पदार्थ प्रतियोगित्व सम्बन्ध से सादृश्य में अन्वित होता है। मुखपद भी मुखार्थपरक है। इवार्थ सादृश्य का आश्रयता सम्बन्ध से मुखार्थ के साथ अन्वय होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त वाक्य का शाब्दबोध है-'चन्द्रप्रतियोगिकसादृश्याश्रयमुखम्'।

'चन्द्रम् इव मुखं पश्यामि' इस वाक्य में चन्द्र और मुख के अभेद सम्बन्ध के अभाव के कारण चन्द्र शब्द से द्वितीया का विधान नहीं हो पायेगा। अतएव इस वाक्य में चन्द्रपद से लक्षणावृत्ति के द्वारा 'चन्द्रसदृश' अर्थ का बोध किया जाता है। इव शब्द को यहां केवल तात्पर्यग्राहक माना जाता है। चन्द्रपदोत्तर द्वितीया विशेषण विभक्ति होने के कारण इसका अर्थ 'अभेद' होगा। इस प्रकार दूसरे वाक्य का शाब्दबोध होगा—'चन्द्रसदृशाभिन्नमुखमहं पश्यामि'।

इस प्रकार इव पद कहीं सादृश्यपरक है और कहीं केवल तात्पर्यग्राहक है।

उद्देश्य-विधेयबोध विचार

उद्देश्य और विधेय का धर्म एक ही अधिकरण में रहता है। जैसा कि 'घटः नीलरूपवान्' प्रयोग में 'घट' उद्देश्य है और नीलरूपवान्' विधेय है। घट का धर्म है 'घटत्व' एवं नीलरूपवान् का धर्म है 'नीलरूप'। घटत्व एवं नीलरूप 'घट' में विद्यमान है। अतः ये दो समानाधिकरण हैं।

उद्देश्यवाचक पद का प्रयोग विधेयवाचकपद के प्रयोग से पहले ही करना चाहिए। इसलिए पूर्वोक्त वाक्य से-घटोद्देश्यकनीलरूपविधेयक

बोध होता है।

जिन दो पदार्थों में प्रकृति-विकृति भाव सम्बन्ध होता है, उन पदार्थों में से प्रकृति का पूर्वप्रयोग और विकृति का परप्रयोग होता है। जैसा कि 'एकोवृक्षः पञ्चनौका भवति'। इस वाक्य में वृक्ष प्रकृति है और नौका विकृति है। यहाँ वृक्षपद नौकारम्भकद्रव्यपरक है। अतः इस वाक्य का अर्थ होगा—'नौकारम्भकद्रव्यं पञ्चनौकारम्भकद्रव्याभिन्नं भवति'। इसी प्रकार 'एकं सुवर्णं दशकुण्डलानि भवति' इत्यादि वाक्यों का भी अर्थबोध होता है।

'यूपाय दारु' में दारुपद दार्वारम्भकद्रव्यपरक है। चतुर्थी विभक्ति का 'उद्देश्यत्व' अथवा जनकत्व अर्थ है। इसीलिए 'यूपायदारु' वाक्य का अर्थबोध होगा—'यूपजनकदार्वारम्भकद्रव्यम्' अथवा यूपोद्देश्यक दार्वारम्भकद्रव्यम्', 'रन्धनाय स्थाली' प्रभृति वाक्यों में चतुर्थी का 'उद्देश्यत्व' मात्र अर्थ होगा। अतः इस वाक्य का अर्थ बोध होगा—'रन्धनोद्देश्यकस्थाली'।

उपसर्ग विचार

उपसर्ग का कोई अर्थ नहीं होता है। वे धातु के अर्थों के द्योतक होते हैं। जैसा कि 'प्रजयति' प्रयोग में 'जि' धातु का 'जय' शक्यार्थ है एवं प्रकृष्ट जय लक्ष्यार्थ। यहाँ 'प्र' उपसर्ग तात्पर्यग्राहक है। इस प्रकार 'प्रजयति' प्रयोग से 'प्रकृष्टजय' रूपक अर्थ का बोध होता है। कुछ लोग 'प्रजयति' पद का शाब्दबोध इस प्रकार करते हैं—जि धातु का 'प्रकृष्टजय' शक्यार्थ है, जिसका केवल 'प्र' उपसर्ग के साथ रहने पर ही बोध होता है। इस प्रकार उपसर्ग द्योतक या तात्पर्य ग्राहक होते हैं।

एक उपसर्ग भिन्न भिन्न धातु के साथ भिन्न भिन्न अर्थ का द्योतक होता है। जैसा कि 'प्रजयति' में 'प्र' उपसर्ग प्रकृष्टार्थ का द्योतक है। परन्तु 'प्रतिष्ठते' में वह 'स्थितिविपरीतर्थगमन' अर्थ का द्योतक है।

यदि उपसर्ग को बाचक माना जाता है तो 'प्रजयति' प्रयोग से 'प्रकृष्टजयाश्रय' यह बोध सम्भव नहीं होता। क्योंकि 'ति' प्रत्यय का अर्थ है 'आश्रय' और इस प्रत्यय की प्रकृति है 'जि' धातु जिसका अर्थ

है केवल 'जय' न कि 'प्रकृष्टजय'। इस प्रकार 'प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थ-बोधकत्वं प्रत्ययानाम्' 'प्रत्यय प्रकृत्यर्थान्वित स्वार्थ का बोध कराता है' नियम के अनुसार 'प्रजयति' का अर्थ होगा 'जयाश्रय' न कि 'प्रकृष्टजयाश्रय'। अतएव धातु का ही 'प्रकृष्टजय' रूपक अर्थ होता है और उपसर्ग केवल द्योतक है—ऐसा सिद्धान्त मानना उचित है।

क्त्वा प्रत्यय विचार

'क्त्वा' प्रत्यय का 'आन्तर्य' अर्थ है। इसके लिए प्रमाण के रूप में 'अनुभव' को ग्रन्थकार ने माना है। 'भुक्त्वा व्रजति' वाक्य में भोजन के अनन्तर (पश्चात्) व्रजन क्रिया होना अनुभव सिद्ध है। अतः 'क्त्वा' प्रत्यय का 'आन्तर्य' अर्थ स्वीकार्य है। यहाँ पर भोजन और व्रजन का समान कर्तृत्व आक्षेपलब्ध है।

'झणकृत्य पतति' 'मुखं सम्मील्य हसति' 'मुखं व्यादाय स्वपिति' प्रभृति प्रयोगों में यद्यपि पतनादि क्रिया के पश्चात् झणकारादि-क्रियायें होती हैं तथापि झणकारादि क्रियाओं के बाद भी पतनादि क्रियाओं की सत्ता उपलब्ध होने के कारण इन प्रयोगों में भी 'क्त्वा' प्रत्यय के 'आन्तर्य' अर्थ को स्वीकार करने पर भी कोई दोष नहीं होता है।

वैधहिंसा विचार

मा हिंस्यात् सर्वाणि भूतानि–यह सामान्य शास्त्र है और 'वायव्यं श्वेतमालमेत' यह विशेषशास्त्र है। सामान्य शास्त्र के द्वारा हिंसा का निषेध किया गया है और विशेष शास्त्र के द्वारा हिंसा का विधान किया गया है। इस प्रकार सामान्य और विशेषशास्त्र में विरोध हुआ। इस स्थिति में कौन बलवत्तर है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए ग्रन्थ-कार कहते हैं कि विशेषशास्त्र निरवकाश होने के कारण बलवत्तर होता है। इसीलिये सामान्य शास्त्र विशेषशास्त्रविहित पदार्थों से भिन्न विषय में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार वैधेतरहिंसा का ही नरकजनकत्व स्वीकृत है। ग्रन्थकार ने इस प्रसङ्ग में भिन्नमत का भी उल्लेख किया है, जिसके अनुसार सामान्य और विशेषसूत्र के भिन्न विषय होने के

कारण उनमें परस्पर विरोध नहीं है। सामान्य शास्त्र में हिंसा अनर्थक का हेतु है और विशेषसूत्र में हिंसा क्रतु प्रकार है। अतः विषयभेद है। इस मत के अनुसार भी वैधेतर हिंसा का नरकजनकत्व सिद्ध होता है। क्योंकि वैधहिंसा क्रतुप्रकार होने के कारण क्रतु स्वर्गजनक होता है, न कि वैध हिंसा। इस प्रकार वैध हिंसा स्वर्गजनिका भी नहीं होती है।

शब्द विचार

शब्द वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक के भेद से दो प्रकार का है। उनमें से साधु शब्द को वर्णात्मक शब्द कहते हैं। साधु शब्द भी दो प्रकार का होता है---वाचक और लाक्षणिक। वाचक भी चार प्रकार का है---यौगिक, रुढ़; योगरुढ़, और यौगिकरुढ़।

नञर्थ

'नञ्' के दो अर्थ हैं संसर्गाभाव एवं अन्योन्याभाव। अभी यह प्रश्न होता है कि क्या नञ् सर्वत्र इन दो अर्थों का बोधक होता है, या कहीं संसर्गाभाव का और कहीं अन्योन्याभाव का? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा गया है कि नञ् सर्वत्र पूर्वोक्त दो अर्थों का वाचक नहीं होता है। परन्तु उसका कहीं संसर्गाभाव वाच्य होता है एवं अन्यत्र अन्योन्याभाव वाच्य के रूप में प्रतीत होता है। जहां विशेष्य और विशेषण पदों का अभेदान्वय होता है, वहां नञ् पद से अन्योन्याभाव का बोध होगा, जबकि जहां विशेष्य और विशेषण पदों का अभेदाति-रिक्तसम्बन्ध रहता है, वहां 'संसर्गाभाव' नञ् पद का वाच्य होगा। जैसे 'नायं नीलघटः'। यहां विशेषण नीलपद के साथ विशेष्य घटपद का (दोनों समानविभक्तिक होने के कारण) अभेदान्वय होता है। अतः इस वाक्य में नञ् का अन्योन्याभाव अर्थ होगा। अन्योन्याभाव का दूसरा नाम भेद है। इस प्रकार पूर्वोक्त वाक्य का अर्थ होगा--सामने स्थित (घट) नीलघट से भिन्न है। 'भूतले घटो नास्ति' इस वाक्य में स्थित नञ् का अर्थ है--संसर्गाभाव। ससर्गाभाव का अन्य नाम अत्यन्ताभाव है। इस वाक्य में विशेषणपद भूतल का विशेष्यपद घट के साथ अभेदातिरिक्त आधारता सम्बन्ध है। अतः

यहां नञ् पद से संसर्गाभाव का बोध होगा। इस प्रकार पूर्वोक्त वाक्य से 'भूतल में घट के अभाव' अर्थ का बोध होता है।

शक्तिग्रहनिरूपण

शक्तिज्ञान के लिए आठ उपाय बताये गये हैं! वे इस प्रकार हैं- व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवृत्ति एवं सिद्धपदसंनिधि। इन उपायों से शक्तिज्ञान कैसे होता है—इस विषय को उदाहरण से स्पष्ट किया जा रहा है-व्याकरण से धातु, प्रत्यय, प्रभृति में स्थित शक्ति का ज्ञान होता है। जैसे-'पाचक' पद में 'पच्' धातु है और 'ण्वुल्' प्रत्यय है। व्याकरण से पच् धातु का 'पाक' अर्थ में [(डु)पच्ष्)-पाके] और ण्वुल् प्रत्यय का कर्ता अर्थ में (कर्तरि कृत्, ण्वुल्तृचौ) शक्ति का ज्ञान होता है। उपमान से गवयादि पदों का शक्तिज्ञान होता है। जिसने गवय को कभी नहीं देखा है, उसे किसी ने कहा कि 'गौरिव गवयः' अर्थात् 'गोसदृश गवय'। जब वह कभी कहीं गोसदृश किसी एक पशु को देखता है, तब उसे 'गौरिव गवयः' वाक्य का स्मरण होता है और उसके पश्चात् गवयपद का शक्तिज्ञान होता है। कोश से पर्यायवाची पदों का शक्तिज्ञान होता है। जैसे-अनादरः परिभवः परिभावस्तिरस्क्रिया' इस अमरकोश के वाक्य से अनादर, परिभव और परिभाव पदों का शक्तिज्ञान होता है। इस कोशवाक्य के अनुसार इन सभी पदों का अर्थ है—तिरस्क्रिया। आप्तवाक्य से भी शक्तिज्ञान होता है। आप्त के द्वारा उच्चारित वाक्य को आप्त वाक्य कहते हैं। किसी भी विषय के यथार्थ ज्ञान वाले को आप्त कहा जाता है। आप्त ने कहा कि 'पिक पद का अर्थ कोकिल' है', इससे दूसरे व्यक्तियों को पिक पद का शक्तिज्ञान हुआ। व्यवहार से भी शक्ति का ज्ञान होता है। जैसे-कोई प्रयोजक वृद्ध (प्रयुक्त भाषा को जानने वाला) किसी प्रयोज्यवृद्ध (प्रयुक्तभाषा को जानने वाला) से कहा कि 'घटमानय' अर्थात् 'घट लाओ'। उस वाक्य को सुनकर प्रयोज्यवृद्धने घट के लाने का कार्य किया। इन सभी क्रियाओं को वालने (प्रयुक्तभाषा का शिक्षणार्थी) देखा और उनसे यह समझा कि घट के लाने के कार्य का कारण 'घटमानय' वाक्य है। इस प्रकार 'पटमानय' वाक्य के

सम्बन्ध में पूर्वोक्त सभी क्रियायों के अवलोकन के पश्चात् यह समझा कि पट के लाने के कार्य का कारण 'पटमानय' वाक्य है। इस प्रक्रिया के पश्चात् वाल का शक्तिमान इस प्रकार हुआ–घटार्थ में घटपद की, पटार्थ में पटपद की शक्ति है। वाक्यशेष से भी शक्तिज्ञान होता है। जैसे–'यवमयश्चरुर्भवति' वाक्य में यवपद का शक्तिज्ञान—

"वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशातनम्।
मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवा कणिशशालिनः॥"

इस वाक्यशेष से होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि दीर्घशूक अर्थ में यवपद की शक्ति है, परन्तु कंगु (धान्यविशेष) अर्थ में इसकी शक्ति नहीं है। आर्य यवपद का दीर्घशूक अर्थ में प्रयोग करते हैं, जब कि म्लेच्छ इस पद का कंगु अर्थ में प्रयोग करते हैं। विवरण से भी शक्तिग्रह होता है। विवरण का अर्थ है–'अन्यपदों से उसी अर्थ को कहना' (शब्दान्तरेण तदर्थकथनम्)। जैसे–'घटो नास्ति' इसका 'कलशो नास्ति' इस विवरण से कलश अर्थ में घटपद की शक्ति है–इसका ज्ञान होता है। उसी प्रकार सिद्धपद के सान्निध्य से भी शक्ति ज्ञान होता है। जैसे—इह सहकारतरौ मधुरं पिको रौति' वाक्य में पिक शब्द का कोकिल रूपी अर्थ सहकारतरुरूपी सिद्ध पद केसान्निध्य से उपस्थित होता है।

पदशक्ति

'अस्मात् शब्दादयमर्थो बोधव्यः' 'इस शब्द से इस अर्थ को समझें, इस प्रकार की ईश्वरेच्छा को शक्ति कहते हैं। अर्थात् किसी भी शब्द का, उसके द्वारा अभिव्यक्त अर्थ के साथ जो सम्बन्ध है, वह ही ईश्वरेच्छा है। आधुनिक संकेत के विषय में भी ईश्वरेच्छा ही शक्ति है–ऐसा कुछ नैयायिकों का मानना है।

पद से शक्ति के द्वारा व्यक्ति विशेष्यरूप से, जाति विशेषण रूप से और वैशिष्ट्य संसर्ग के रूप में उपस्थित होते हैं।

रेखाचित्र के माध्यम से शाब्दबोध का प्रदर्शनः

रेखाचित्र के माध्यम से ग्रन्थकर्ता के सिद्धान्तों के आधार पर ३० वाक्यों के शाब्दबोध प्रदर्शित किये गये हैं। शाब्दबोध के प्रदर्शन में जिस पद्धति का अङ्गीकार किया गया है, वह इस प्रकार है–

१. (ऊपर से) प्रथम पंक्ति के चतुष्कोण रेखाचित्रों में वाक्यस्थ प्रत्येक पद (सुबन्त और तिङन्त) प्रदर्शित है।

२. द्वितीय पंक्ति के चतुष्कोण रेखाचित्रों में क्रम से वाक्यस्थ प्रत्येक पद की प्रकृति और प्रत्यय प्रदर्शित हैं। वाम पार्श्वस्थ चतुष्कोण रेखाचित्र मे प्रकृति का और दक्षिण पार्श्वस्थ रेखाचित्र में प्रत्यय का उल्लेख किया गया है।

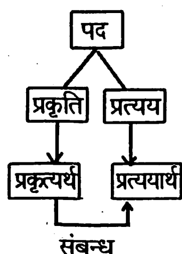
३. तृतीय पंक्ति के चतुष्कोण रेखाचित्रों में क्रम से प्रत्येक प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ प्रदर्शित है। वाम पार्श्वस्थ चतुष्कोण रेखाचित्र में प्रकृत्यर्थ का और दक्षिण पार्श्वस्थ चतुष्कोण रेखाचित्र में प्रत्ययार्थ का उल्लेख किया गया है।

४. अन्त में समस्त अर्थों का सम्बन्ध └───↑ - इस वक्र रेखा के माध्यम से प्रदर्शित हैं। जिस अर्थ की ओर तीर का निशान है, उस अर्थ में, जिस अर्थ के पास से उस वक्र रेखा का प्रारम्भ हुआ है, उस अर्थ का अन्वय होगा। प्रत्येक संबन्ध रेखा केनीचे उल्लिखित है।

५. दो दो अर्थों का शाब्दबोध पृथक रूप से किया गया है, जो १, २, ३, ... आदि संख्या के माध्यम से प्रदर्शित है। अन्त में सम्पूर्ण शाब्दबोध का भी उल्लेख है।

६. जहाँ तृतीय पंक्ति में '0' लिखा गया है, वहाँ प्रत्यय का साधुत्वमात्र ही अर्थ है।

यह सम्पूर्ण पद्धति निम्नलिखित रेखाचित्र से ज्ञात हो सकती है–



एक वानूचैत्रः

निम्नलिखित वाक्यों के शाब्दबोध रेखाचित्र के माध्यम से प्रदर्शित हैं–

१) चैत्रः तण्डुलं पचति

२) चैत्रेण तण्डुलः पच्यते।

३) चैत्रः घटम् आनयति।

४) करोति।

५) द्वेष्टि।

६) जानाति।

७) इच्छति।

८) यजते।

९) रथो गच्छति।

१०) त्यजति।

११) पतति।

१२) नश्यति।

१३) विद्यते।

१४) निद्राति।

१५) चैत्रः मैत्रं तण्डुलं पाचयति।

(१६) चैत्रेण मैत्रः तण्डुलं पाच्यते।

१७) पिपठिषति

१८) देवदत्तेन शास्त्रं पिपठिष्यते।

१९) अन्नस्य पक्ता

२०) चैत्रेण अन्नं पक्वम्।

२१) चैत्रेण पक्वम्।

22) चैत्रः एधः आहर्तुं व्रजति

२३) अजां ग्रामं नयति।

२४) पथिकेन ग्रामम् अजा नीयते।

२५) गोपालकः गां पयः दोग्धि।

२६) गोपालकेन गौः क्षीरं दुह्यते।

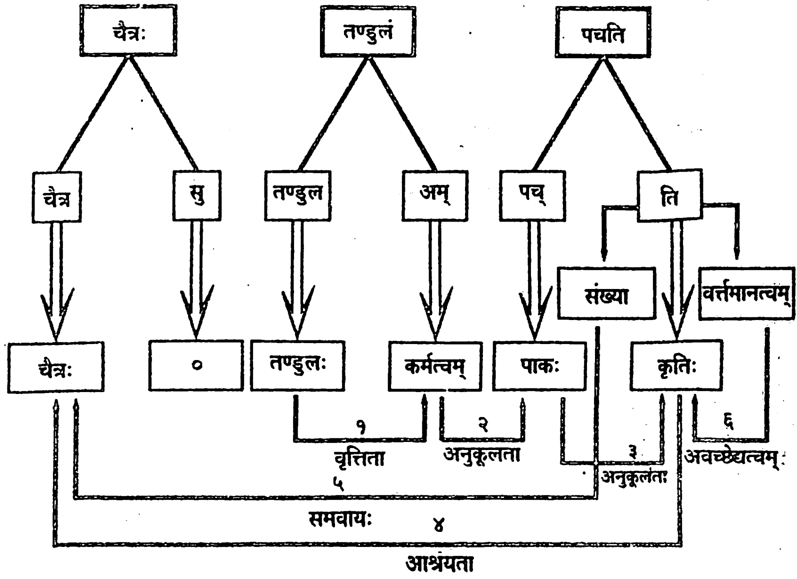
२७) चैत्रस्य पाकः।

२८) वानरैः समुद्रस्य बन्धः अद्‌भुतः।

२९) व्याकरणे अधीती चैत्रः।

३०) चर्मणि द्विपिनं हन्ति।

(1) चैत्रः तण्डुलं पचति



१. तण्डुलवृत्तिकर्मत्वम्

२. कर्मत्वानुकूलपाकः

३. पाकानुकूला कृतिः

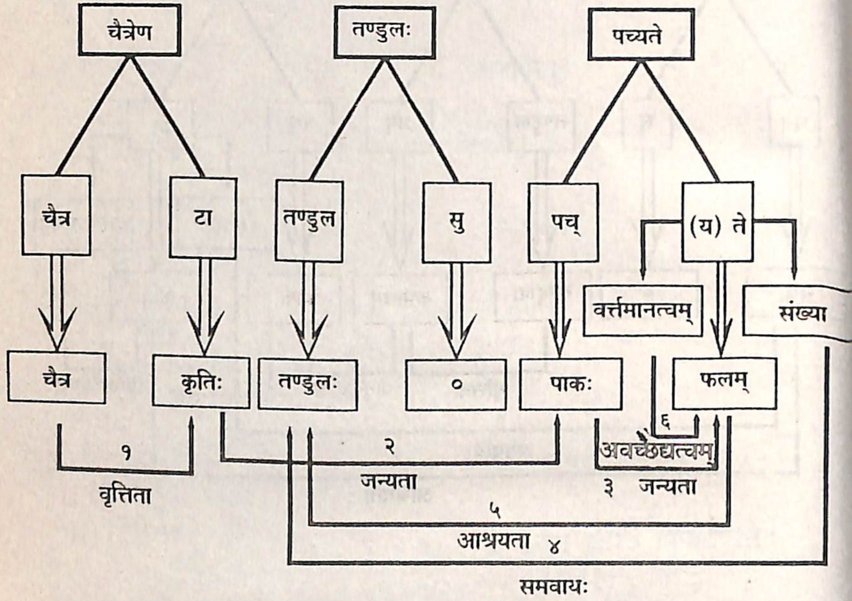
४. कृत्याश्रयःचैत्रः

५. एकत्वविशिष्टः

६. वर्तमानकालिकी कृतिः

तण्डुलवृत्तिकर्मत्वानुकूलपाकानुकूलवर्त्तमानकृत्याश्रय एकत्ववान् चैत्रः।

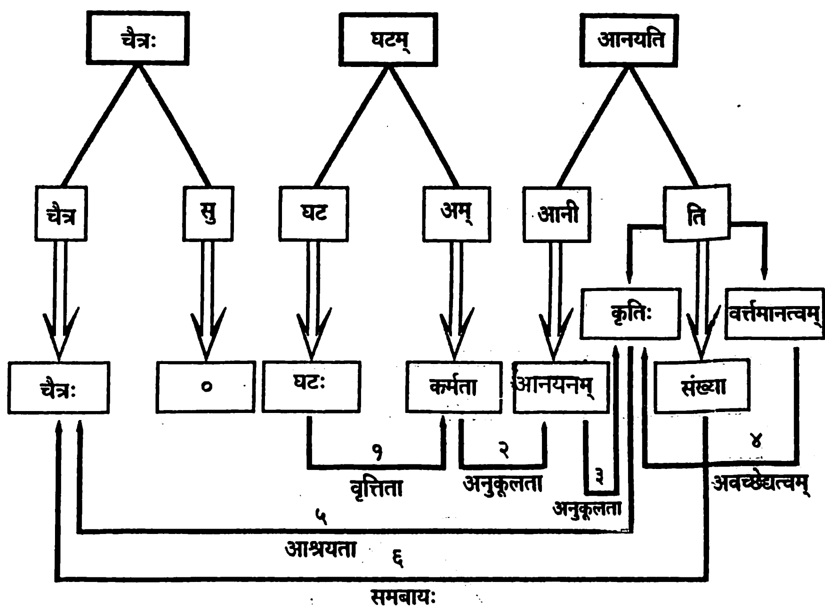
(II). **चैत्रेण तण्डुलः पच्यते।**



१. चैत्रवृत्तिकृतिः
२. कृतिजन्यपाकः
३. पाकजन्यफलम्
४. एकत्ववान् तण्डुलः
५. फलाश्रयः तण्डुलः
६. वर्तमानकालिकं फलम्

चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाकजन्यवर्त्तमानफलाश्रय एकत्ववान् तण्डुलः।

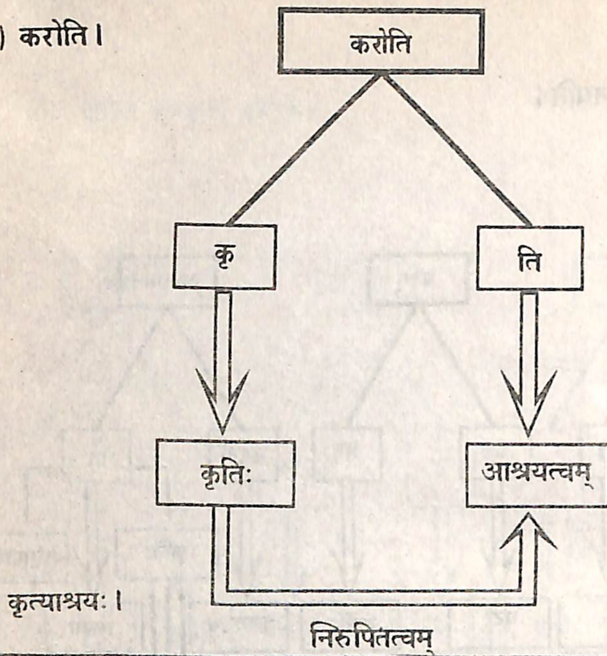
(iii) चैत्रः घटम् आनयति।



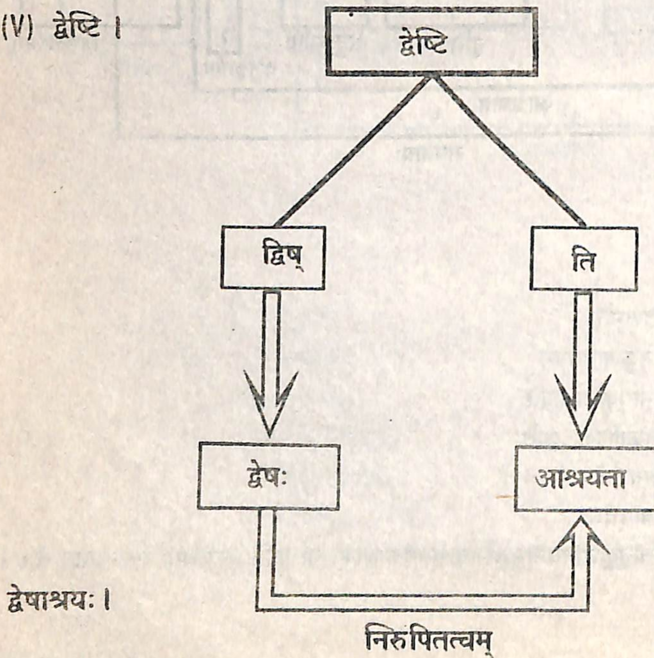
१. घटवृत्तिकर्मता
२. कर्मतानुकूलानयनम्
३. आनयनानुकूला कृतिः
४. वर्तमानकालिकी कृतिः
५. कृत्याश्रयः चैत्रः
६. एकत्ववान्चैत्रः

घटवृत्तिकर्मतानुकूलानयनानुकूलावर्त्तमानकालिकी या कृतिः तदाश्रयः एकत्ववान् चैत्रः।

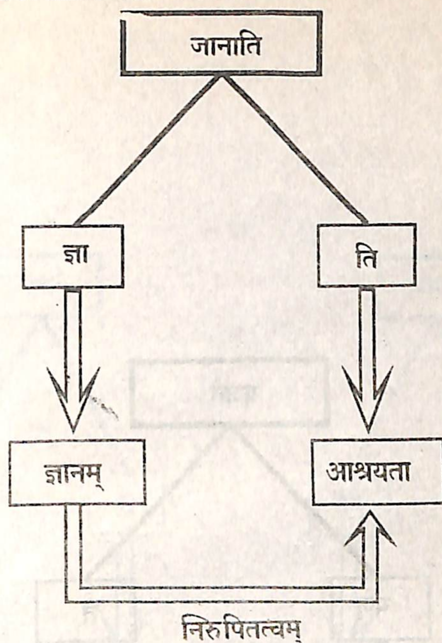
(IV) करोति।


करोति
कृ
ति
कृतिः
आश्रयत्वम्
कृत्याश्रयः।
निरुपितत्वम्

(V) द्वेष्टि।

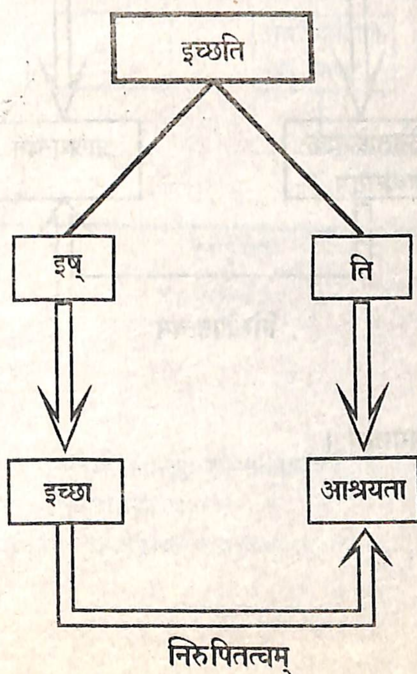

द्वेष्टि
द्विष्
ति
द्वेषः
आश्रयता
द्वेषाश्रयः।
निरुपितत्वम्

(VI) जानाति ।



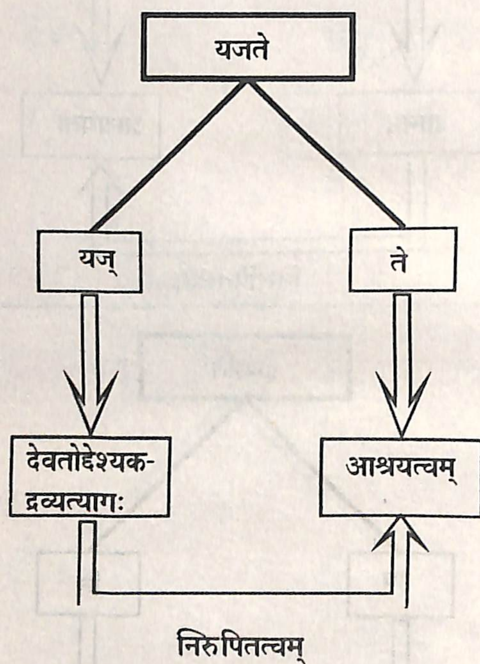
ज्ञानाश्रयः

(VII) इच्छति ।



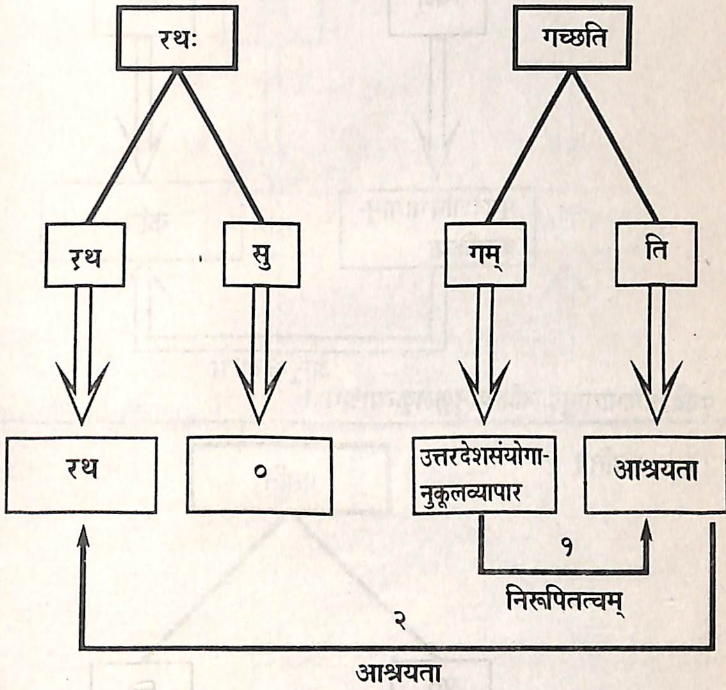
इच्छाश्रयः ।

(VIII) यजते।



देवतोद्देश्यकद्रव्यत्यागाश्रयः।

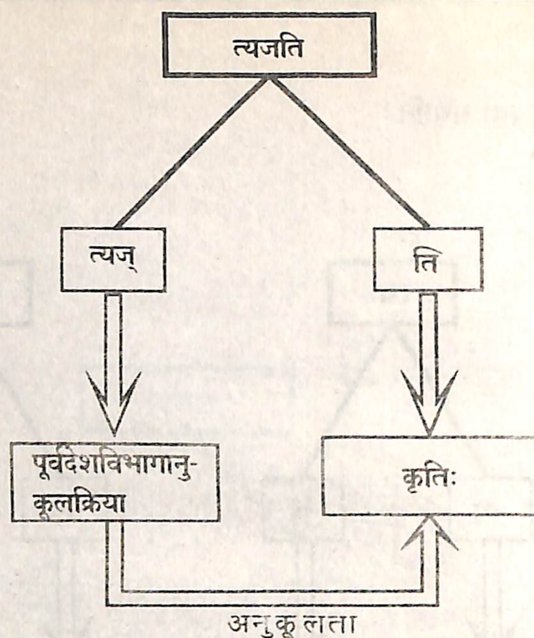
(IX) रथो गच्छति।



१. उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापारनिरूपिताश्रयता।
२. आश्रयताश्रयो रथः।

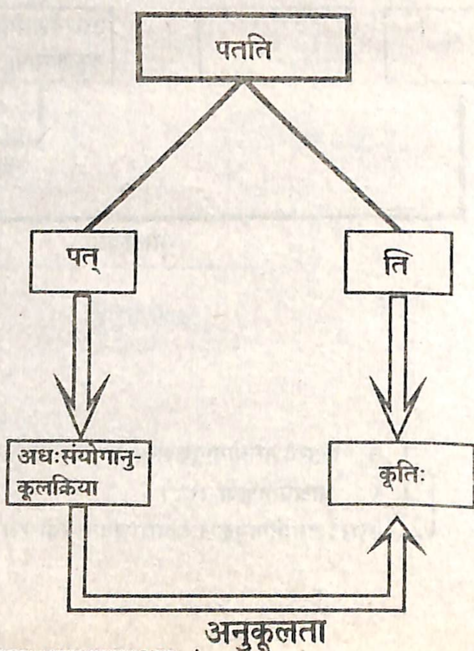
उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापाराश्रयताश्रयो रथः।

(X) . त्यजति।



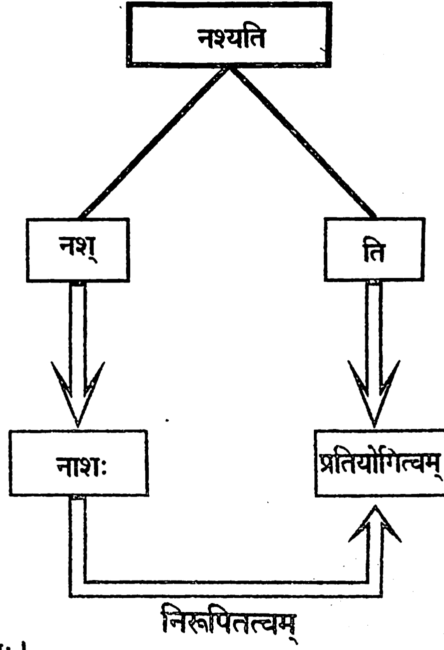
पूर्वदेशविभागानुकूलक्रियानुकूलकृत्याश्रयः।

(XI) पतति।



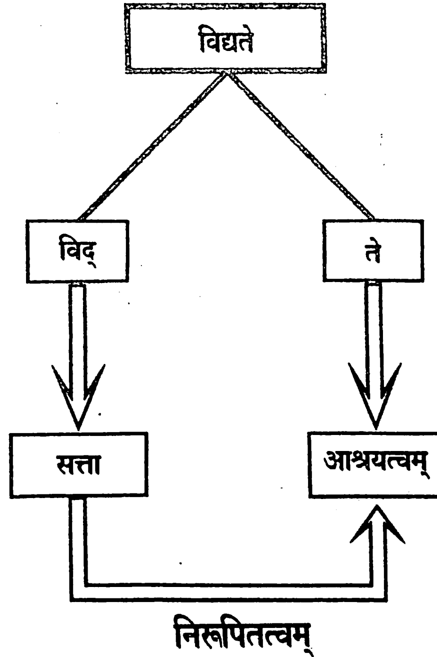
अधःसंयोगानुकूलक्रियानुकूलकृत्याश्रयः।

(XII) नश्यति।



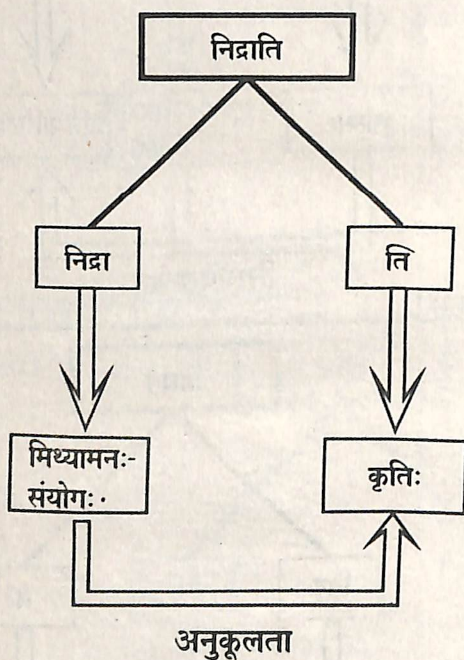
नाशप्रतियोगित्वाश्रयः।

(XIII) विद्यते।



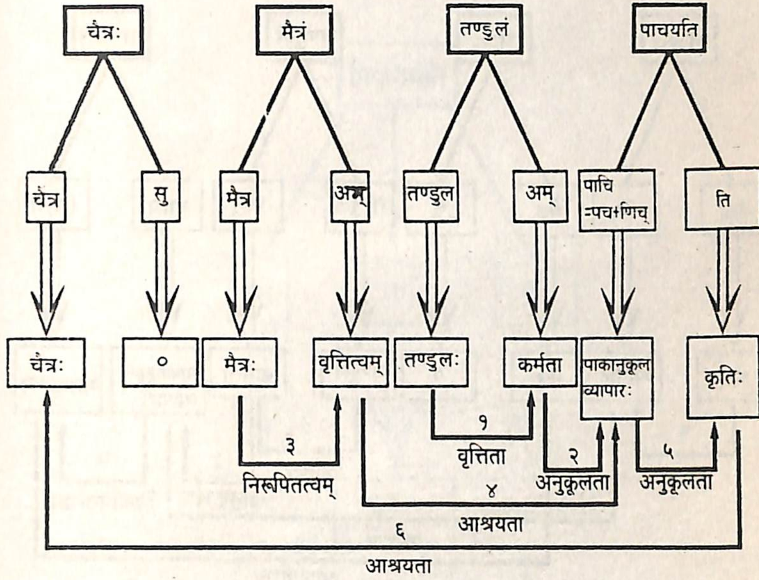
सत्ताश्रयः।

(XIV) निद्राति ।



मिथ्यामनःसंयोगानुकूलकृत्याश्रयः ।

(XV) **चैत्रः मैत्रं तण्डुलं पाचयति।**



१. तण्डुलवृत्तिकर्मता

२. कर्मतानुकूलपाकानुकूलव्यापारः

३. मैत्रवृत्तिः।

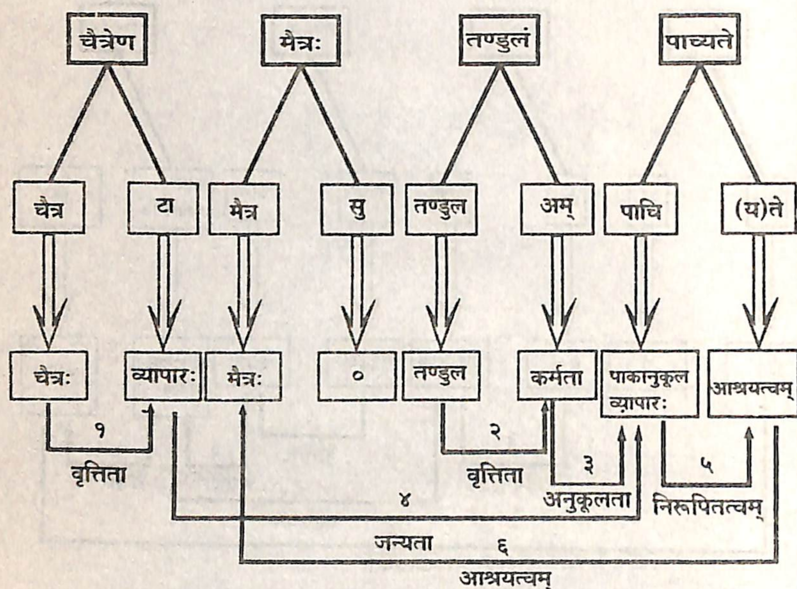
४. (मैत्र)वृत्तिपाकानुकूलव्यापारः

५. पाकानुकूलव्यापारानुकूला कृतिः

६. कृत्याश्रयः चैत्रः

तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलमैत्रवृत्तिपाकानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमान् चैत्रः।

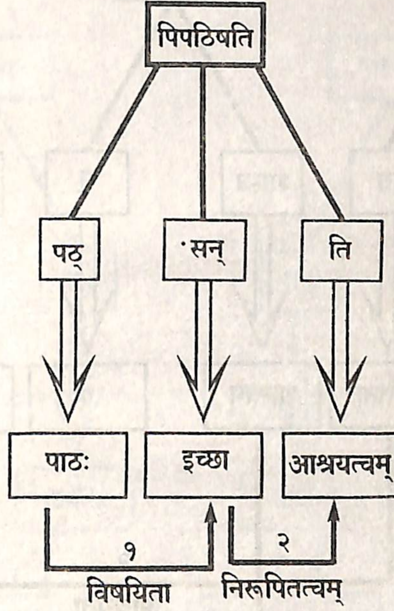
(XVI) चैत्रेण मैत्रः तण्डुलं पाच्यते।



१. चैत्रवृत्तिव्यापारः
२. तण्डुलवृत्तिकर्मता
३. कर्मतानुकूलपाकानुकूलव्यापारः
४. (चैत्रवृत्ति) व्यापारजन्यपाकानुकूलव्यापारः
५. पाकानुकूलव्यापारनिरूपिताश्रयत्वम्
६. आश्रयत्वाश्रयः मैत्रः

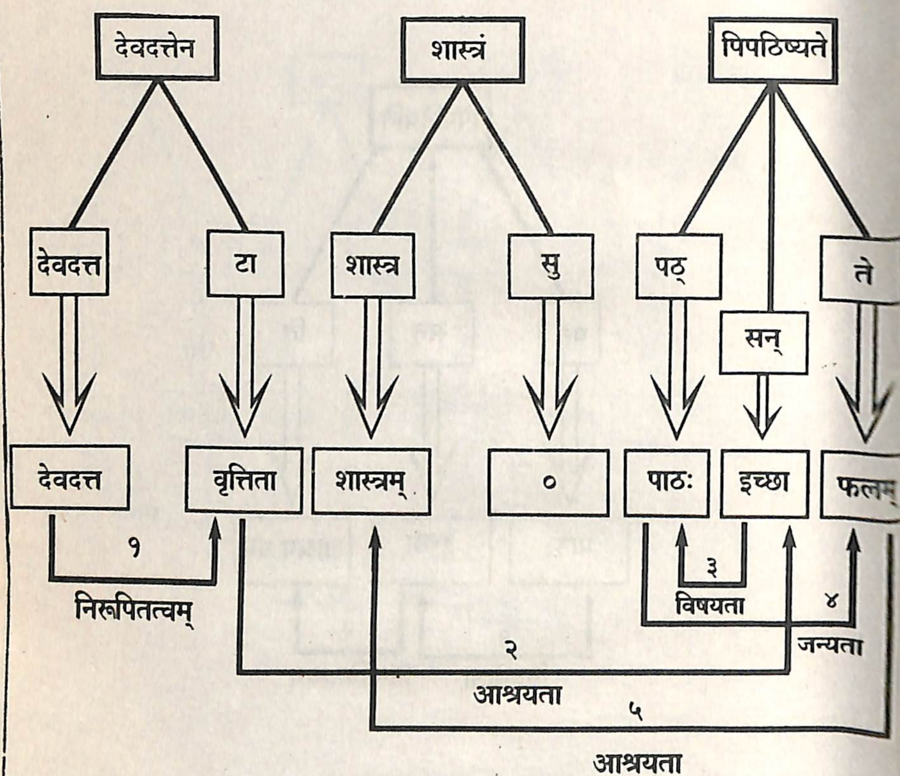
चैत्रवृत्तिव्यापारजन्यतण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलव्यापाराश्रयः मैत्रः।

(XVII) पिपठिषति



१. पाठविषयकेच्छा।
२. इच्छानिरूपिताश्रयत्वम्।
पाठविषयकेच्छाश्रयत्वाश्रयः।

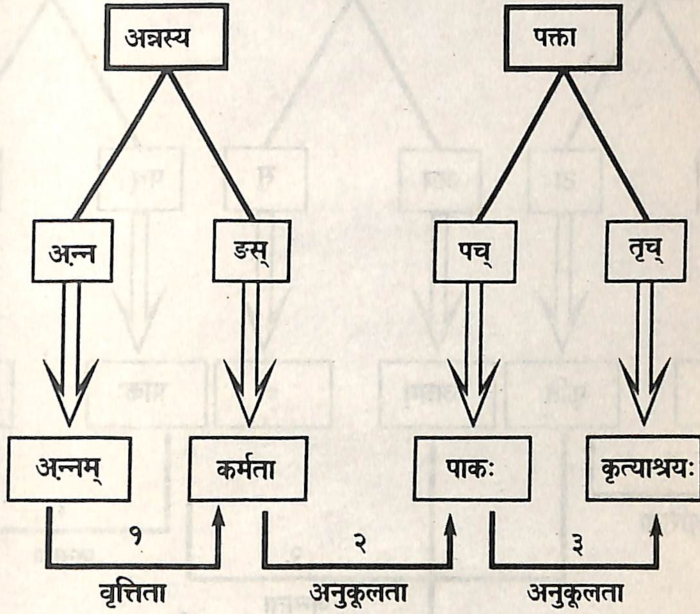
(XVIII) देवदत्तेन शास्त्रं पिपठिष्यते।



१. देवदत्तवृत्तिः।
२. (देवदत्त)वृत्तीच्छा।
३. इच्छाविषयःपाठः
४. पाठजन्यम्फलम्
५. फलाश्रयं शास्त्रम्।

देवदत्तवृत्तीच्छाविषयपाठजन्यफलशालिशास्त्रम्।

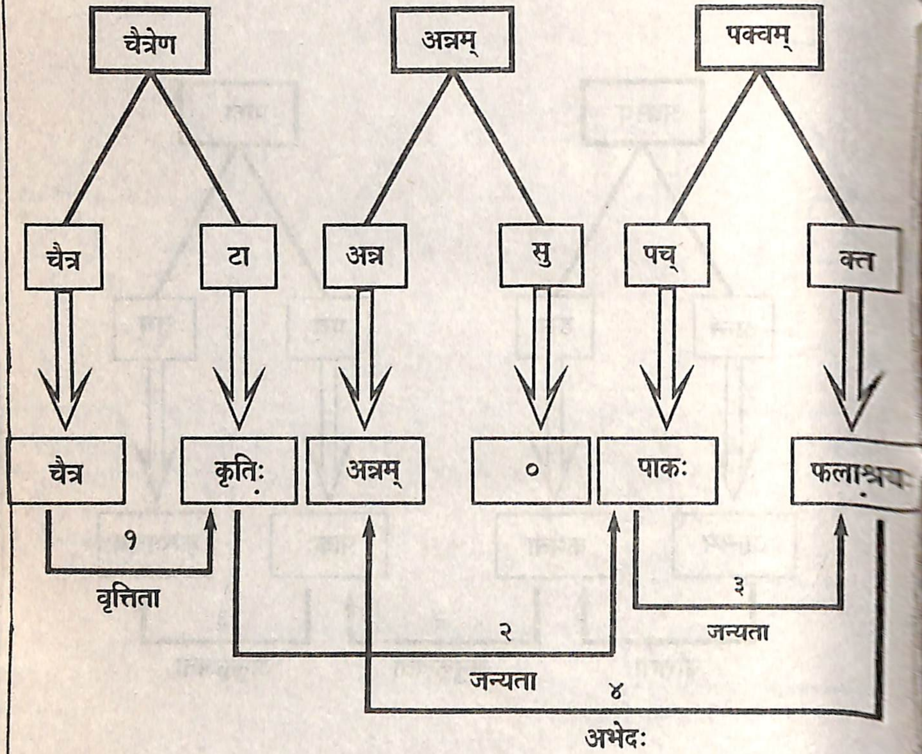
(XIX) अन्नस्य पक्ता



१. अन्नवृत्तिकर्मता।
२. कर्मतानुकूलपाकः।
३. पाकानुकूलकृत्याश्रयः।

अन्नकर्मकपाकानुकूलकृत्याश्रयः।

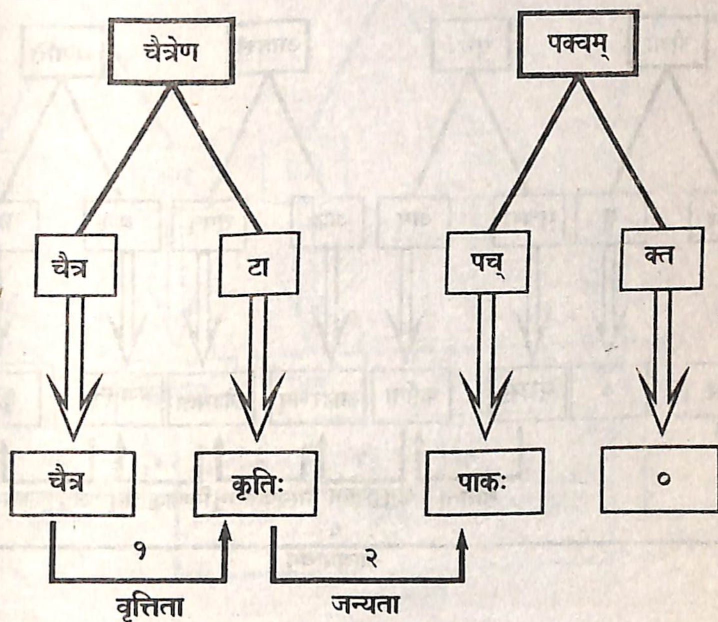
(XX) चैत्रेण अन्नं पक्वम्।



१. चैत्रवृत्तिकृतिः।
२. कृतिजन्यपाकः।
३. पाकजन्यफलाश्रयः।
४. फलाश्रयाभिन्नम् अन्नम्।

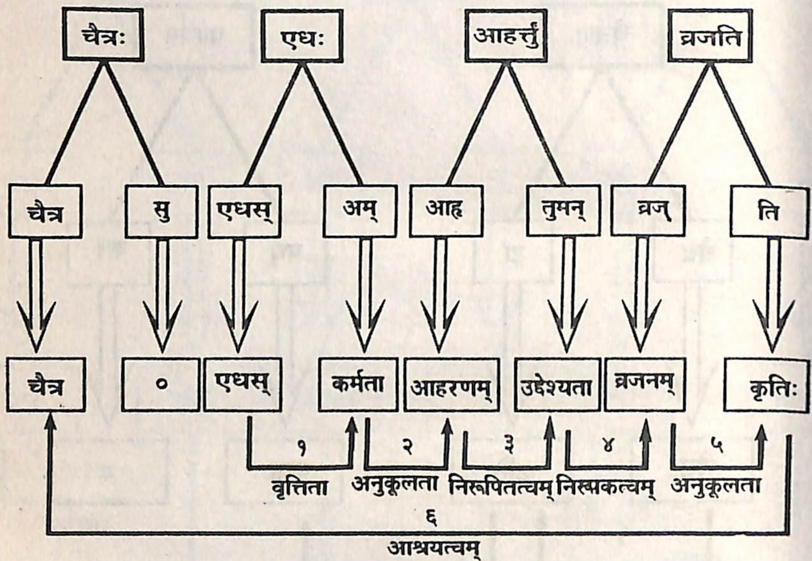
चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाकजन्यफलशाल्यभिन्नम् अन्नम्।

(XXI) चैत्रेण पक्वम् ।



१. चैत्रवृत्तिकृतिः ।
२. कृतिजन्यपाकः ।
चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाकः ।

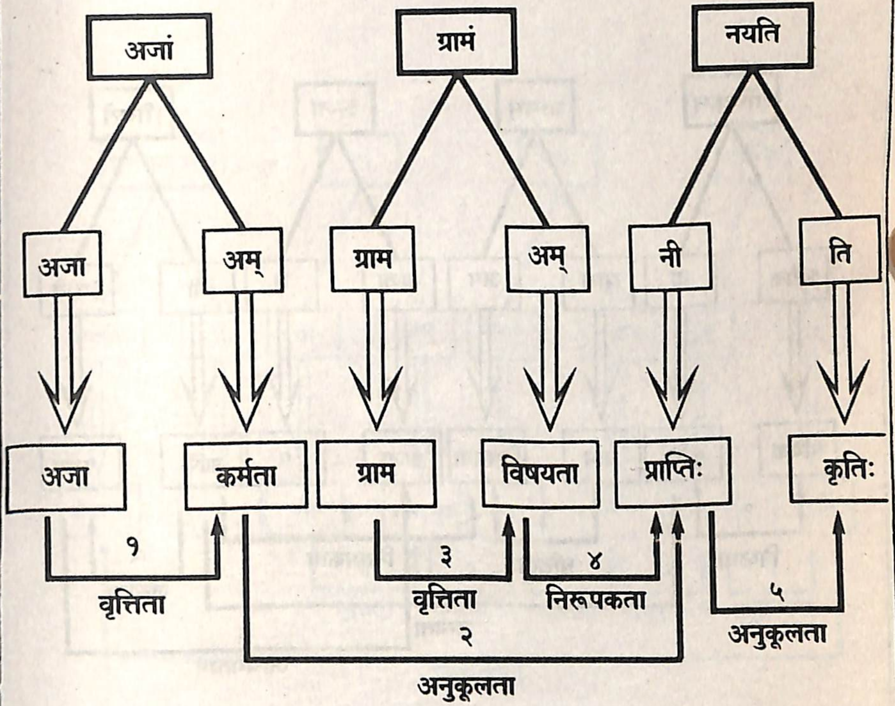
(XXII) चैत्रः एधः आहर्त्तुं व्रजति



१. एधोवृत्तिकर्मता।
२. कर्मतानुकूलमाहरणम्।
३. आहरणनिरूपितोद्देश्यता।
४. उद्देश्यतानिरूपकव्रजनम्।
५. व्रजनानुकूला कृतिः।
६. कृत्याश्रयः चैत्रः।

एधोवृत्तिकर्मतानुकूलाहरणोद्देश्यकव्रजनानुकूलकृत्याश्रयश्चैत्रः।

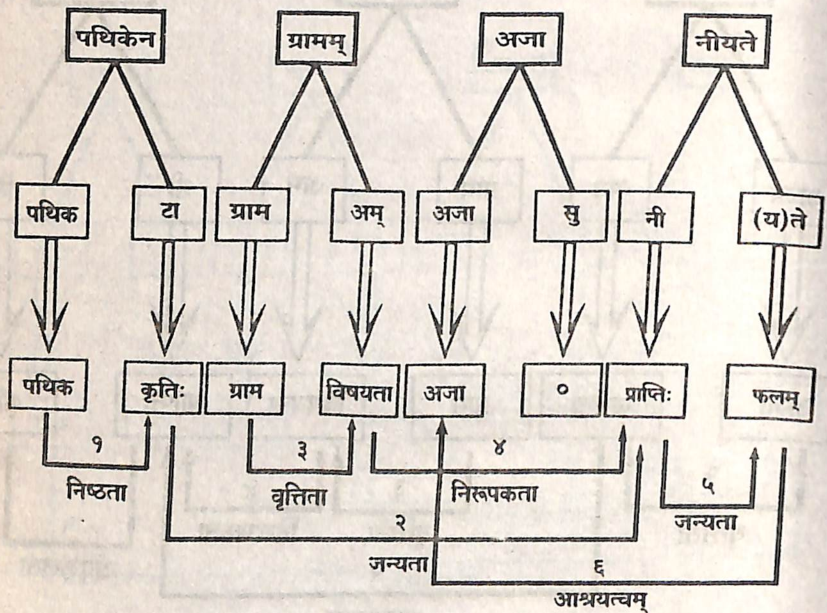
(XXIII) अजां ग्रामं नयति।



१. अजावृत्तिकर्मता।
२. कर्मतानुकूला प्राप्तिः।
३. ग्रामवृत्तिविषयता।
४. विषयतानिरूपिका प्राप्तिः।
५. प्राप्त्यनुकूला कृतिः।

अजावृत्तिकर्मतानुकूला या ग्रामविषयिणी प्राप्तिस्तदनुकूलकृत्याश्रयः।

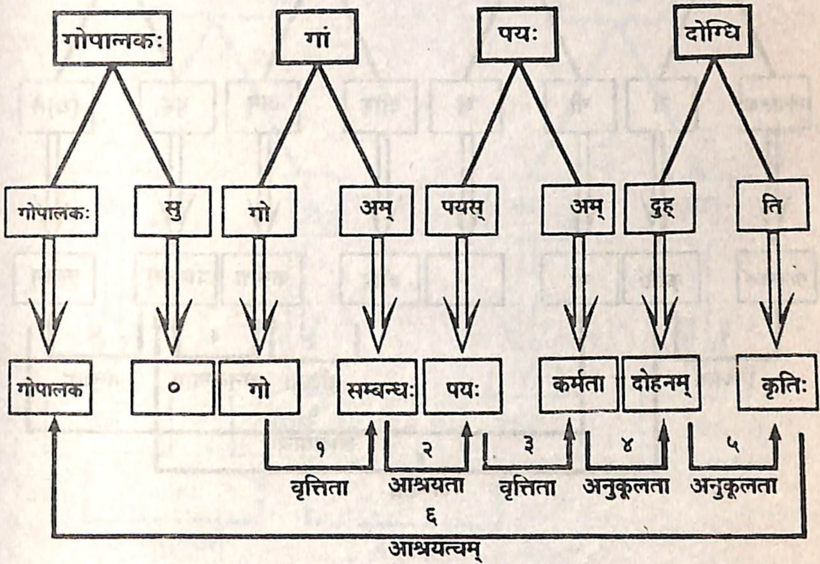
(XXIV) पथिकेन ग्रामम् अजा नीयते।



१. पथिकनिष्ठकृतिः।
२. कृतिजन्याप्राप्तिः।
३. ग्रामवृत्तिविषयता।
४. विषयतानिरूपकप्राप्तिः।
५. प्राप्तिजन्यम्फलम्।
६. फलाश्रया अजा।

पथिकनिष्ठकृतिजन्या ग्रामविषयणी या प्राप्ति स्तज्जन्यफलाश्रया अजा।

(XXV) गोपालकः गां पयः दोग्धि।



१. गोवृत्तिसम्बन्धः।
२. संबन्धाश्रयं पयः।
३. पयोवृत्तिकर्मता।
४. कर्मतानुकूलंदोहनम्।
५. दोहनानुकूला कृतिः।
६. कृत्याश्रयः गोपालकः।

गोसम्बन्धिपयोवृत्तिकर्मतानुकूलदोहनानुकूलकृत्याश्रयः गोपालकः।

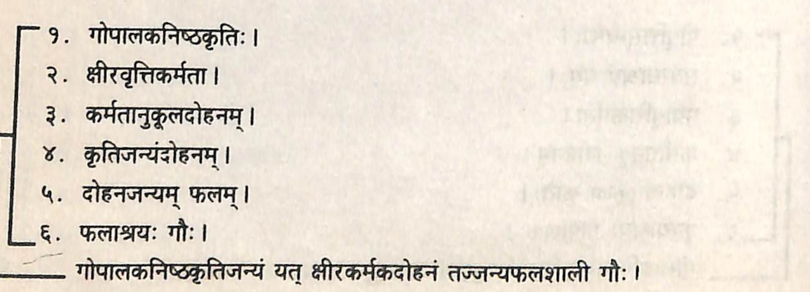
(XXVI) गोपालकेन गौः क्षीरं दुह्यते।

गोपालकेन गौः क्षीरं दुह्यते

गोपालक टा गो सु क्षीर अम् दुह् (य)ते

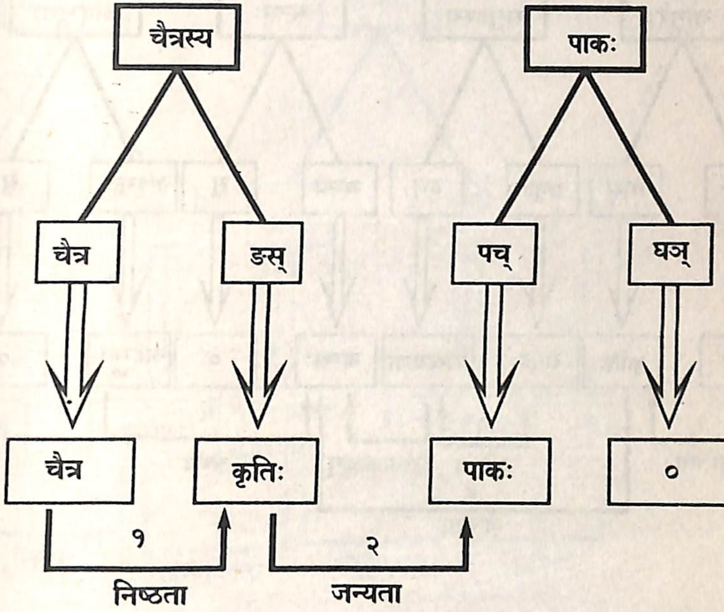
गोपालक कृतिः गो ० क्षीर कर्मता दोहनम् फलम्

१ निष्ठता
२ वृत्तिता
३ अनुकूलता
५ जन्यता
६ आश्रयत्वम्
४ जन्यता


१. गोपालकनिष्ठकृतिः।
२. क्षीरवृत्तिकर्मता।
३. कर्मतानुकूलदोहनम्।
४. कृतिजन्यंदोहनम्।
५. दोहनजन्यम् फलम्।
६. फलाश्रयः गौः।

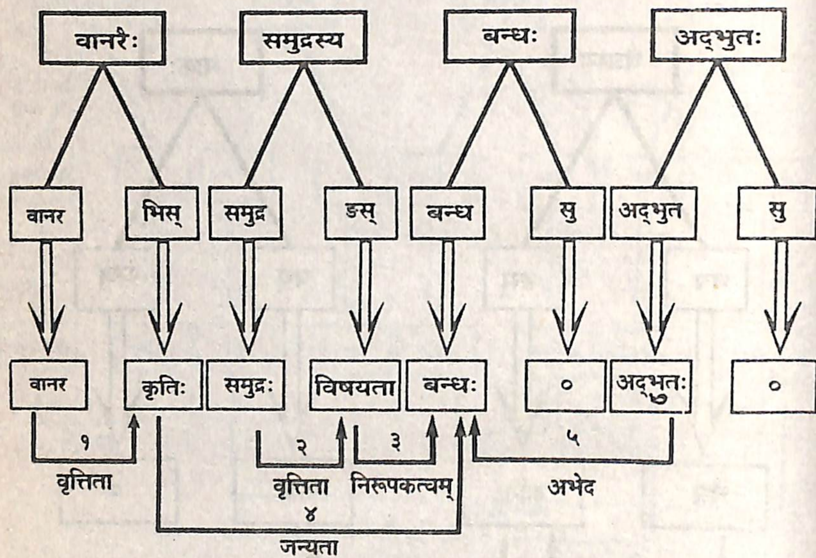
गोपालकनिष्ठकृतिजन्यं यत् क्षीरकर्मकदोहनं तज्जन्यफलशाली गौः।

(XXVII) चैत्रस्य पाकः ।



१. चैत्रनिष्ठकृतिः ।
२. कृतिजन्यपाकः ।
चैत्रनिष्ठकृतिजन्यपाकः ।

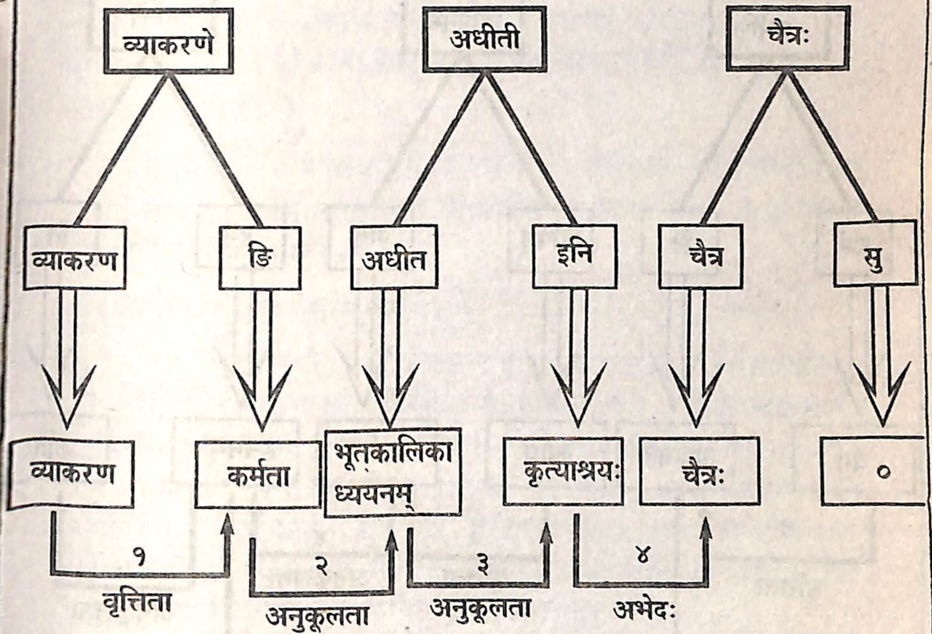
(XXVIII) वानरैः समुद्रस्य बन्धः अद्भुतः।



१. वानरवृत्तिकृतिः।
२. समुद्रवृत्तिविषयता।
३. विषयतानिरूपकबन्धः।
४. कृतिजन्यबन्धः।
५. अद्भुताभिन्नः बन्धः।

वानरीयकृतिजन्यः समुद्रविषयकः अद्भुताभिन्नः बन्धः।

(XXIX) व्याकरणे अधीती चैत्रः।



१. व्याकरणवृत्तिकर्मता।

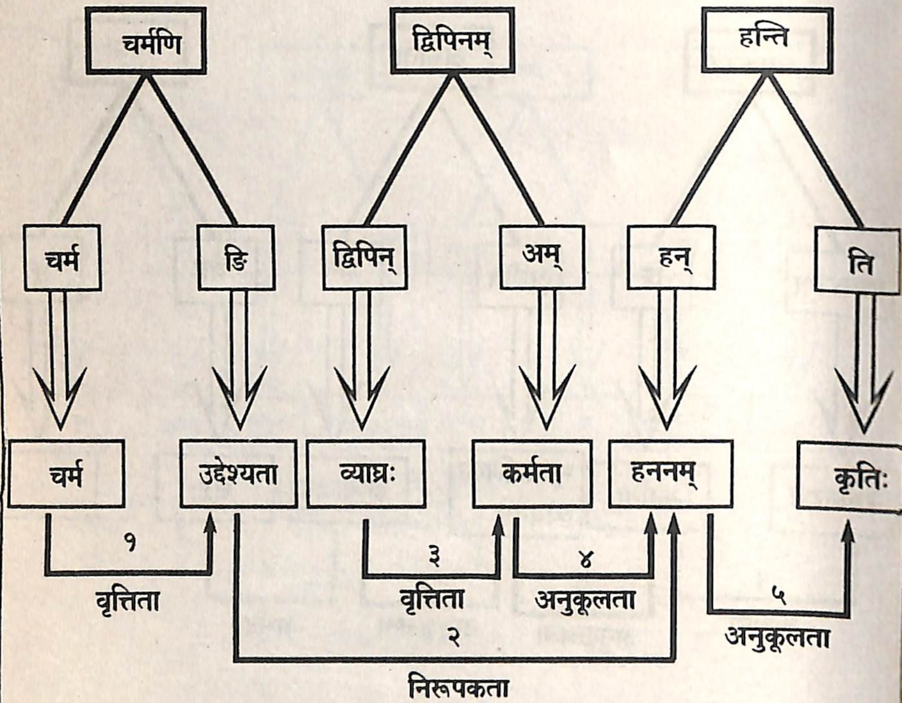
२. कर्मतानुकूलभूतकालिकाध्ययनम्।

३. भूतकालिकाध्ययनानुकूलकृत्याश्रयः।

४. कृत्याश्रयाभिन्नः चैत्रः।

व्याकरणवृत्तिकर्मतानुकूलभूतकालिकाध्ययनानुकूलकृत्याश्रयाभिन्नः चैत्रः।

(XXX) चर्मणि द्विपिनं हन्ति।



१. चर्मवृत्त्युद्देश्यता।

२. उद्देश्यतानिरूपकहननम्।

३. व्याघ्रवृत्तिकर्मता।

४. कर्मतानुकूलं हननम्।

५. हननानुकूलकृतिः।

चर्मोद्देश्यकं यद् व्याघ्रकर्मकं हननं तदनुकूलकृत्याश्रयः।

श्रीष्टदेवतायै नमः

(मङ्गलाचरणम्)

हेरम्बचरणं वन्द्यं, विघ्ननाशकरं परम्।
प्रणम्य जयकृष्णेन, क्रियते सारमञ्जरी ॥

(त्रयः कालाः)

प्रथमतः कालत्रयनिरूपणम्। वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम् अतीतत्वम्। वर्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वं भविष्यत्त्वम्। शब्दप्रयोगाधिकरणत्वं वर्त्तमानत्वम्।

(लकारादौ शक्तिनिरूपणम्)

अथ लकारादौ शक्तिनिरूपणम्। तत्र लटो वर्तमानत्वमर्थः। विधिलिङो भविष्यत्त्वं, विधिः, सम्भावना च। विधिः कर्तव्यस्योपदेशः। सम्भावना फलकल्पनम्। लोटो भविष्यत्त्वम्, आशीः, प्रेरणा च। आशीः शुभचिन्तनम्। प्रेरणा प्रवर्त्तनम्। आशीर्लिङो भविष्यत्त्वम्, आशीश्च। लुट्लृटो भविष्यत्त्वम्। लङ्लुङोरतीतत्वम्। लिटो वक्तुः परोक्षत्वम्, अतीतत्वञ्च। लृङोऽतीतत्वं, क्रियातिक्रमश्च। कुतश्चिद् वैगुण्यात् क्रियाऽनिष्पत्तिः क्रियातिक्रमः।

(लकारातिरिक्तेषु केषुचित् प्रत्ययेषु शक्तिनिरूपणम्)

यङः क्रियासमभिव्याहारोऽतिशयितत्वञ्च। क्रियायाः समभिव्याहारः पौनःपुन्यम्। सनो धात्वर्थविषयिणीच्छा। समानकर्तृकत्वेऽभिधानम्। णिचो हेतुमान्। प्रयोजकव्यापारो हेतुमान्। स च धात्वर्थानुकूलव्यापार इति यावत्। तृचो वर्तमानत्वं, शतृशानचो वर्तमानत्वमेककर्तृकत्वमेककालीनत्वञ्च। तव्यानीयरयोर्भविष्यत्त्वं विधिश्च। क्तक्तवतोरतीतत्वम्। तुमुन्ण्वुलोः क्रियार्था क्रिया एककर्त्तृकत्वञ्च। उद्देश्यतासंबन्धेन क्रियानिमित्तभूता क्रिया क्रियार्था

क्रिया। खल्घञ्ल्युटां कालसामान्ये भावे च। भावो धात्वर्थः। क्त्वाल्यपो र्भावगतानन्तर्यम्, भावः क्रियासमानकर्तृकोऽपीति संक्षेपः।

(अथ आख्याते शक्तिनिरूपणम्)

अथ लकारस्थानीयतिङाम् आख्यातपदवाच्यत्वम्। सच स्यात्त्रि-विधः :—कर्तृविहितः, कर्मविहितः, भावविहितश्च। तत्र कर्तृविहिता-ख्यातस्य कृतावेव शक्तिः। कृतित्वरूपशक्यतावच्छेदके लाघवात्। न कर्त्तरि। शक्यतावच्छेदककृतेरननुगमात्। न चाख्यातेन कर्तृरन-भिधाने चैत्रः पचतीत्यत्र चैत्रपदोत्तरं तृतीया, लकारेणानभिधाना दितिवाच्यम्। कतृगतसंख्याभिधानानभिधानांभ्यां तृतीयादेर्व्यवस्था-पितत्वात्। एवं व्यापारेऽपि न शक्तिः।

अतएव कर्तृविहिताख्यातस्य कृतौ वर्तमानत्वादौ शक्तिः सिद्धा। तत्र चैत्रोऽन्नं पचतीत्यत्र अन्नकर्मताकपचनानुकूलवर्तमानकालीनकृत्या-श्रयाभिन्नैकत्ववान् चैत्र इति शाब्दबोधे कृतावेव वर्तमानत्वादिकं प्रतीयते। आदिपदेन भूतत्व-भविष्यत्त्वयोर्ग्रहणम्। एकत्वादिकं कर्तर्येव च प्रतीयते। तत्रादिपदेन द्वित्वबहुत्वयोर्ग्रहणम्। तत्र एकपदार्था-परपदार्थयोर्विशेष्यविशेषणभावेनान्वयबोध इति व्युत्पत्तेः स्वीकाराद-नुभावाच्च।

अथ कर्मविहिताख्यातस्य फले शक्तिः। न कर्मणि। फलं धात्वर्थता-वच्छेदकम्। अतएव धातोः फलावच्छिन्नव्यापारबोधकत्वेनैव सकर्म-कत्वं तदबोधकत्वेनाकर्मकत्वमिति बोध्यम्।

कर्माख्यातस्यापि फले, वर्तमानत्वादौ, एकत्वादौ च शक्तिः। शाब्द-बोधे तु वर्तमानत्वादिकं फले, एकत्वादिकं फलाश्रये कर्मण्येव प्रती-यते। तेन तण्डुलः पच्यत इत्यत्र तण्डुलपदोत्तरं न द्वितीया। कर्म-गतसंख्याभिधानानभिधानाभ्यां द्वितीयादेर्व्यवस्थापितत्वात् इति। देवदत्तेन पच्यते तण्डुल इत्यत्र देवदत्तनिष्ठकृतिजन्यपचनजन्यवर्तमान-कालीनविक्लित्तिरूपफलाश्रयैकत्ववान् तण्डुल इति शाब्दबोधः। एकपदोपात्तपदार्थयोर्न बिशेष्यविशेषणभावेनान्वयबोध इति व्युत्पत्तेर-स्वीकारात्।

अथ भावविहिताख्यातस्य धात्वर्थ एव शक्तिः। तत्र संख्यान्वयिप्रथमान्तपदाभावात्। आख्यातेनोक्तसंख्यायाः प्रथमान्तपदोपस्थाप्यपदार्थान्वितत्वेन क्लृप्तत्वात्। एकवचनं प्रयोगसाधुत्वार्थकमेवेति।

अथाख्यातविशेषार्थकथनम्।

सविषयकधात्वर्थाभिधायिधातुस्थले कर्तृविहिताख्यातस्याश्रयत्वेन लक्षणा। यथा करोति, द्वेष्टि, यजति, जानाति, गच्छतीत्यादौ। एवमचेतनो रथो गच्छतीत्यादौ व्यापाराश्रयत्वे लक्षणा। नश्यतीत्यत्र प्रतियोगित्वेन लक्षणा। अत एव नश्यति, नङ्क्ष्यति, नष्ट इत्यादौ वर्तमानत्वादिकं प्रतियोगित्व एवान्वेति।

अथ शाब्दबोधप्रकारः कथ्यते।

तण्डुलं पचतीत्यत्र तण्डुलपदेन तण्डुलपदार्थोपस्थितिः। द्वितीयया कर्मतारूपफलोपस्थितिः। वृत्तित्वं संसर्गः। वृत्तित्वम् आधेयत्वम्। तेन तण्डुलवृत्तिकर्मत्वमित्यवान्तरबोधः। अवान्तरं महावाक्यैकदेशः। पच् धातुना पाकोपस्थितिः। पाको नाम विक्लित्त्यनुकूलव्यापारः। स च अधिश्रयणादि अधःश्रयणान्तपूर्वापरीभूतव्यापारकलापः। तत्र अनुकूलतासंसर्गेण तादृशकर्मतान्वयः। तेन तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूल पाक इति शाब्दबोधः। तत आख्यातेन कृत्युपस्थितिः। तत्र अनुकलतासंसर्गेण तादृशपाकान्वयः। तेन तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलपाकानुकूलकृतिरित्यन्वयबोधः। तत्र चैत्रपदेन चैत्रपदार्थोपस्थितिः। तत्राश्रयतासंसर्गेण तादृशकृतेरन्वयः। तेन तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलपाकानुकूलवर्तमानकृत्याश्रयाभिन्नैकत्ववान् चैत्र इति महावाक्यार्थबोधः। वाक्यार्थश्च वक्तुस्तात्पर्यार्थः। वक्ता तु तात्पर्यार्थरूपवाक्यार्थमवगत्य पश्चाच्छब्दः प्रयुज्यते। सर्वत्र प्रथमान्तपदोपस्थाप्य-पदार्थस्यैव शाब्दबोधे मुख्यविशेष्यत्वात्। प्रथमाविभक्तिस्तु साधुत्वार्था। एवं चैत्रेण पच्यते तण्डुल इत्यत्र चैत्रपदेन चैत्रोपस्थितिः। तृतीयया कृत्युपस्थितिः। वृत्तित्वं संसर्गः। तेन चैत्रवृत्तिकृतिरिति बोधः। पच्धातुना पाकोपस्थितिः। जन्यतासंसर्गः। तेन चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाक इति बोधः। कर्माख्यातेन फलोपस्थितिः। जन्यता च संसर्गः। तादृशपाकजन्यफलमित्यर्थः। तण्डुलपदेन तण्डुलोपस्थितिः। तत्राश्रयत्वसंसर्गेण

तादृशफलान्वयः। तेन चैत्रवृत्तिकृतिजन्यपाकजन्यवर्तमानफलाश्रयाभिन्नैकत्ववान् तण्डुल इति महावाक्यार्थः। एवं घटमानयतीत्यत्र घटपदेन घटोपस्थितिः। द्वितीयया कर्मतोपस्थितिः। कर्मता च उत्तरदेशसंयोगरूपा। वृत्तित्वं संसर्गः। तेन घटवृत्तिकर्मत्वमितिबोधः। आङ्पूर्वणीधातुना आनयनोपस्थितिः। अनुकूलता संसर्गः। तेन घटवृत्तिकर्मतानुकूलमानयनमिति बोधः। तत आख्यातेन कृत्युपस्थितिः। अनुकूलतासंसर्गेण तादृशानयनस्य कृतावन्वयः। तेन तादृशानयनानुकूलकृतिरिति बोधः। ततश्चैत्रपदेन चैत्रोपस्थितिः। तत्राश्रयतासम्बन्धेन तादृशकृतेरन्वयः। तेन घटवृत्तिकर्मतानुकूलानयनानुकूलकृतिमान् चैत्र इति महावाक्यार्थबोधः।

एवं करोतीत्यत्र कृधातुना कृत्युपस्थितिः। आख्यातेन लक्षणया आश्रयत्वोपस्थितिः, तत्राश्रयतासंसर्गेण कृत्याश्रय इति शाब्दबोधः। एवं द्वेष्टि-जानातीच्छतियजत इत्यादौ बोध्यम्। यजत इति यजधातोर्देवतोद्देश्यकद्रव्यत्यागरूपार्थत्वात् त्यागस्य च इच्छारूपत्वात् सविषयकधातूदाहरणे तदुदाहृतम्।

एवं रथो गच्छतीत्यत्र गम्धातुना उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापारोपस्थितिः। आख्यातेन लक्षणया आश्रयत्वोपस्थितिः। तदुपरि आश्रयत्वं संसर्गः। तेन उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापाराश्रयत्वाश्रयो रथ (इति) बोधः। त्यजतीत्यत्र त्यज्धातुना पूर्वदेशविभागानुकूलक्रियोपस्थितिः। आख्यातेन कृत्युपस्थितिः। आश्रयत्वं संसर्गः। तेन पूर्वदेशविभागानुकूलकृत्याश्रय इति बोधः। एवं पततीत्यत्र पत्धातुना अधःसंयोगानुकूलक्रियोपस्थितिः। आख्यातेन कृत्युपस्थितिः। आश्रयत्वं संसर्गः। तेन अधःसंयोगानुकूलक्रियानुकूलकृत्याश्रय इति बोधः। एवं नश्यतीत्यत्र नश्धातुना नाशोपस्थितिः। आख्यातेन लक्षणया प्रतियोगित्वोपस्थितिः। आश्रयत्वं संसर्गः। तेन नाशप्रतियोगित्वाश्रय इति बोधः। एवं विद्यत इत्यत्र विद्धातुना सत्तोपस्थितिः। आख्यातेन लक्षणया चाश्रयत्वोपस्थितिः। आश्रयत्वं संसर्गः। तेन सत्ताश्रयत्वाश्रय इति बोधः। एवं निद्रातीत्यत्र निपूर्वद्राधातुना मिथ्यामनःसंयोगोपस्थितिः। आख्यातेन कृत्युपस्थितिः। आश्रयत्वं संसर्गः। तेन मिथ्यामनःसंयोगानुकूलकृत्याश्रय इति बोधः।

एवं चैत्रो मैत्रं तण्डुलं पाचयतीत्यत्र मैत्रपदोत्तरद्वितीयया वृत्तित्वम्। तण्डुलपदोत्तरद्वितीयया फलम्। णिजन्तपच्धातुना पाकानुकूलव्यापारः। आख्यातेन तदनुकूलकृतिः। तेन तण्डुलवृत्तिकर्मतानुकूलमैत्रवृत्तिपाकानुकूलव्यापारानुकूलकृतिमान् चैत्र इति बोधः। यदा चैत्रो मैत्रेण तण्डुलं पाचयतीति प्रयोगः तदापि पूर्ववदन्वयः। मैत्रस्य स्वव्यापारापेक्षया कर्तृत्वम्। चैत्रस्य व्यापारापेक्षया कर्मत्वम्। अतो द्वितीयातृतीययोर्वैकल्पिकत्वं बोध्यम्। एवं चैत्रेण मैत्रस्तण्डल पाच्यत इत्यत्र चैत्रवृत्तिव्यापारजन्यतण्डुलवृत्तिकर्मतानुकुलव्यापाराश्रयो मैत्र इति बोधः। वृत्तित्वं संसर्गः। तृतीयया व्यापारो बोध्यते। पच्धातुना पाकानुकूलव्यापारो बोध्यते। कर्माख्यातेनाश्रयत्वं द्वितीयया कर्मत्वं च बोध्यते। एवं पिपठिषतीत्यत्र पठ्धातुना पाठोपस्थितिः। सन् प्रत्ययेन इच्छोपस्थितिः। विषयिता संसर्गः। आख्यातेन लक्षणया आश्रयत्वोपस्थितिः। तदुपरि आश्रयत्वं संसर्गः। तेन पाठविषयकेच्छाश्रयत्वाश्रय इतिबोधः। एवं देवदत्तेन शास्त्रं पिपठिष्यत इत्यत्र देवदत्तपदोत्तरतृतीयया वृत्तित्वम्। निरूपकत्वसंसर्गेण तादृशदेवदत्तस्य वृत्तित्वेऽन्वयः। तेन देवदत्तावृत्तीच्छाविषयपाठजन्यफलशालिशास्त्रमिति बोधः।

अथ कर्तृविहित-कृत्प्रत्ययस्य कृत्याश्रये शक्तिः। तेनान्नस्य पक्ता इत्यत्र षष्ठयां द्वितीयायाः प्रतिरूपकत्वात् कर्मत्वम्। पच्धातुना पाकः। तृचा कृत्याश्रयो बोध्यते। अभेदः संसर्गः। तेनान्नकर्मकपाकानुकूलकृत्याश्रयाभिन्नश्चैत्र इति बोधः। एवम् अन्नस्य पाचक इत्यत्र ण्वुलप्रत्ययेन कृत्याश्रयो बोध्यते।

अथ भावकर्मविहितकृत्प्रत्ययस्य भावकर्मणोः शक्तिः। तेन चैत्रेण पक्वमन्नमित्यत्र चैत्रपदोत्तरतृतीयया कृत्युपस्थितिः। पचधातुना पाकोपस्थितिः। जन्यत्वं संसर्गः। अभेदः संसर्गः। तेन चैत्रवृत्तिकृतिपाकजन्यफलशाल्यभिन्नमन्नमिति बोधः। भावस्थले चैत्रेण पक्व जन्यमित्यत्र चैत्रवृत्तिकृतिजन्यः पाक इति बोध्यम्। भावकृद्घञादीनां प्रयोगसाधुतामात्रम्। द्विवचनादिकं तु कृदभिहितो भावो द्रव्यवद् प्रकाशते इति न्यायाच्च। एवमेध आहर्तुं व्रजतीत्यत्र एध पदेन काष्ठोपस्थितिः। द्वितीयया कर्मत्वोपस्थितिः। तुमुना प्रकृतक्रियानिष्ठ-

क्रियान्तरनिमित्तोपस्थितिः। व्रज्धातुना गमनोपस्थितिः। आख्यातेन कृत्युपस्थितिः। आश्रयत्वं संसर्गः। तेन एधोवृत्तिकर्मतानुकूलाहरणोद्देशकव्रजनानुकूलकृत्याश्रयश्चैत्र इति बोधः।

अथ द्विकर्मकविचारः

अजां ग्रामं नयतीत्यत्र अजावृत्तिकर्मतानुकूला या ग्रामविषयिणी प्राप्तिः तदनुकूलकृत्याश्रय इति बोधः। एवं नीयतेऽजा ग्रामं पथिकेनेत्यत्र पथिकनिष्ठकृतिजन्या या ग्रामविषयिणी प्राप्तिः तज्जन्यफलशालिनी इति बोधः।

एवं गां दोग्धि पयो गोपालकः इत्यत्र गोसम्बन्धिपयोवृत्तिकर्मतानुकूलदोहनानुकूलकृत्तिमानित्यन्वयः। एवं दुह्यते गौः क्षीरं गोपालकेनेत्यत्र गोपालकनिष्ठकृतिजन्यक्षीरकर्मकदोहननिमित्तं गौरित्यन्वयबोधः। प्रकृते कर्माख्यातेनाप्रधानकर्मणो गवादेर्बोधजननादित्यकथितं कर्मेत्युक्तम्। कर्मत्वातिदेशस्तु द्वितीयाभावार्थो न तु साक्षात्कर्मेत्यर्थः। एवं चैत्रस्य पाकः, अद्भुतः समुद्रस्य बन्धो वानरैरित्यादौ चैत्रभिष्ठकृतिजन्यः पाकः, एवं वानरीयकृतिजन्यसमुद्रविषयकबन्धमद्भुतमित्यन्वयः।

क्वचित् तृतीयाप्रतिकृतिराकृतिरित्यर्थः। क्वचिद्द्वितीया-प्रतिनिधित्वात्कर्मत्वमर्थः। एवमधीती व्याकरणे, पठिती शास्त्रेइत्यादौ व्याकरणमधीतवान्, शास्त्रं पठितवानित्यन्वयबोधः। क्तस्येन्विषयस्य कर्मणीत्यनेन सप्तम्या द्वितीयाप्रतिनिधित्वात्। क्तान्तादधीतशब्दात् 'क्तस्येन्'–इत्यनेन इनिप्रत्ययविधानात्।

एवं चर्मणि द्विपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरं, बालेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः।'' इत्यादौ निमित्तात्कर्मसयोग इति निमित्ते सप्तमी। निमित्तात् उद्देश्यान्तरवाचकपदात् इत्यर्थः, तथा च यदा निमित्ताकर्मणो रवयवावयवित्वं सम्बन्धश्च तदा निमित्तावाचकपदात् सप्तमी भवति। तेन चर्मोद्देश्यकं यत्व्याघ्रकर्मकहननं तदनुकूलकृतिमान् इति अन्वयबोधः। एवम् अन्यत्रापि बोध्यम्। 'पुष्फलको गन्धमृगः' सिम्नि = अण्डकोषे।

सत्सप्तम्या सामानाधिकरण्यमर्थः। तच्च क्वचित् कालिकं क्वचित् दैशिकं च। गोषु दुह्यमानासु गतः, दुग्धासु गतः इत्यादौ समानकालिकत्वं भाषते। तेन गोविषयकवर्तमानदोहनसमकालिकगमनानुकूलातीतकृतिमान् इत्यन्वयबोधः। दैशिकं यथा द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वे सति सत्त्वमित्यादौ सत्त्वनिष्ठगुणकर्मणोर्भेदसमानदेशत्वं भासते। तथा च गुणकर्मप्रतियोगिको यो भेदः तत्समानदेशा सत्ता इति बोधः, द्रव्ये भेदसत्त्वयो दैशिकसामानाधिकरण्यादिति। एवं पितृव्यघाती पुत्रो जनिता, वनं गतः श्वो भविता राम इत्यादौ पितृव्यं हतवान् इत्यर्थे पितृव्यघाती, जनिष्यते इत्यर्थे जनिता च। अतः कथं भविष्यदुत्पत्तिके पुत्रे पितृव्यकर्मकं हननं साधु। कर्तृत्वसम्बन्धोऽसम्भव इत्यतो धातुसम्बन्धे प्रत्यया इति सूत्रकरणम्। तस्यायमर्थः—धात्वर्थस्यावश्यकसम्बन्धे तद्धात्वर्थसमभिव्याहृतक्रियान्तराद् भिन्नकालीना अपि प्रत्ययाः स्युः इति बोधे यथोचितकालमादाय विषयीभवति। तेन भविष्यदुत्पत्तिके पुत्रे यदवश्यं पितृव्यकर्मकहननं भासते, तत्रैवायं प्रयोगः साधुः। तेनातीतकालविहितप्रत्ययेन आवश्यकत्वं भासते। भविष्यदुत्पत्तिको पुत्रोऽवश्यं पितृव्यं हनिष्यतीति बोधः। एवं परदिनोत्पत्तिप्रतियोगी रामोऽवश्यं वनं गमिष्यतीति बोधः।

अथ कारकविचारः

तत्र कारकविचारे क्रियानिमित्तत्वं कारकत्वमिति वैयाकरणाः। कारकत्वं क्रियानिमित्तत्वम्। तच्च क्वचित् साक्षात् सम्बन्धात् क्वचित् परंपरासम्बन्धात् भिन्नम्। मैत्रस्य तण्डुलं पचति इत्यत्र सम्बन्धिनि मैत्रे कारकत्वापत्तेः। संप्रदानादेरनुमतिप्रकाशनद्वारेव तण्डुलादिसंपादनद्वारापि पाकनिमित्तत्वात्। विभक्त्यर्थद्वारा क्रियान्वयित्वं कारकत्वमिति नैयायिकलक्षणम्। अत एव नामार्थधात्वर्थयोर्भेदेन साक्षादन्वयस्याव्युत्पन्नत्वात् द्वारीभूतविभक्त्यर्थोपस्थितेस्तत्र लक्षणत्वं कल्प्यम्। विभक्तिस्तु क्वचित् सुबात्मिका क्वचिद् तिङात्मिका इति शेषः। क्रियाविशेषणस्य कारकत्वं नास्ति। तत्र च पारिभाषिककर्मसंज्ञा। तस्य च क्रियान्वयित्वादतिव्याप्तिमाशक्याह स्तोकं पचतीत्यादौ क्रियाविशेषणेऽतिव्याप्तिवारणाय विभक्त्यर्थेति। तत्र द्वितीया पदसाधुत्वार्था। 'सम्बन्धिनः क्रियानिमित्तित्वेऽपि न

विभक्त्यर्थद्वारा क्रियान्वयित्वम्। अतो नातिव्याप्तिः। गुरुविप्रतपस्विदुर्गतानां प्रतिकुर्वीत भिषक्तस्य भेषजैरित्यत्र नामार्थाध्याहारः कर्तव्यः। तेन नातिव्याप्तिरिति।

अथ कर्तृकारकलक्षणम्

क्रियानुकूलकृतिमत्त्वं कर्तृत्वम्। करणार्थककृञ् धातुव्युत्पन्नत्वात्। ततोऽन्यत्राचेतनादौ भाक्तं कर्तृत्वम् इति।

अथ क्रियालक्षणम्

धातोरर्थः क्रिया। सा च द्विधा क्वचित् कर्तृस्था, क्वचिच् च कर्मस्था, तत्र गमिपठिप्रभृतीनां कर्तृस्थैव क्रिया। तस्याः पञ्चविधकर्मान्यतमरूपत्वात्। पचतिप्रभृतीनां कर्मस्थैव क्रिया। क्वचित् अधःसन्तापनादिरूपत्वात्, क्वचिदवयवविभागरूपत्वादिति संक्षेपः।

अथ कर्मलक्षणम्

परसमवेतक्रियाजन्यफलशालित्वं कर्मत्वम्। कर्तृभिन्ने परसमवेतत्वे सति यत् क्रियाजन्यफलं तत्शालित्वमर्थः। परसमवेत इति **विशेषणोक्त्या** 'ग्रामं गच्छतीत्यादौ संयोगरूपफलशालित्वे **कर्तुः नातिव्याप्तिः**। अत एव फलावच्छिन्नव्यापारबोधकत्वात् **धातोः सकर्मकत्वव्यवहारः**। गच्छतीत्यत्र उत्तरदेशसंयोगफलकगमनं **गम्धात्वर्थः**। गां ददातीत्यत्र स्वस्वत्वध्वंपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्त्यभिन्नतया **गोदानं नैव** मदीयम्, भवदिच्छारूपस्त्यागः। इदं दाधात्वर्थः। **तज्जन्यं फलं** स्वस्वत्वध्वंसपूर्वकपरकीयत्वं तत्शालित्वात् गोः **कर्मत्वम्। तण्डुलं** पचतीत्यादौ अधःसन्तापजन्यविक्लितिः फलम्। **तच्छालित्वात्** तण्डुलादेः कर्मत्वम्। अतएव यत्र कर्तृगता क्रिया तत्र लक्षणं मुख्यम्। यत्र तु कर्मगताक्रिया तत्र लक्षणं गौणम्। एवम् ओदनं पचतीत्यत्र ओदनपदेन तण्डुले लक्षणा। विक्लितिफलयोगात्।

तच्च कर्म त्रिविधम्। प्राप्यं, निर्वर्त्यं, विकार्यम्। यत् तु कर्मणो धात्वर्थजन्यफलशालित्वं तत् प्राप्यम्। गच्छति, पचति, हन्तीत्यादयः। यत् तु कृत्यादिसाध्यत्वेन विषयत्वं तन्निर्वर्त्यम्। यथा घटं करोतीत्यादयः। एवं सर्वत्र घटादिपदेन मृत्पिण्डादौ लक्षणा। तेन साक्षात्

कृतावन्वयबाधात्। एवं घटं करोति, इच्छति यजति द्वेष्टीत्येवमादिषु। यत्र तु प्रकृत्युच्छेदजनितरूपान्तरवत्त्वं तद् विकार्यम्। यथा काष्ठं भस्म करोति। दुग्धं दधिकरोति। तण्डुलानोदनं करोति। सुवर्णं कुण्डलं करोति इत्यादि। अत्र भस्मादेः कर्मत्वं, न काष्ठादेः। भस्मादिषु काष्ठसम्बन्ध्यभिन्नत्वबोधाय भस्मादिपदसमनियतविभक्तिमत्त्वं काष्ठादेः। तथा च काष्ठसम्बन्ध्यभिन्नविषयककृत्याश्रय इति बोधः। एवम् अन्यत्रापि बोध्यम्। किन्तु अजां ग्रामं नयति इत्यादिवत् द्विकर्मत्वं न। तत्र भिन्नत्वबोधात्। अजावृत्तिकर्मतानुकूला या ग्रामविषयिणी प्राप्तिस्तदनुकूलकृतिमानित्यन्वयबोधः। एवञ्च गां दोग्धि पयः गोपालक इत्यत्र बोधे गोसम्बन्धित्वं पयोनिष्ठं ज्ञेयम्। एवं नीयतेऽजा ग्रामं पथिकेनेत्यत्र पथिकवृत्तिकृतिजन्या या ग्रामविषयिणी प्राप्तिस्तज्जन्यफलशालिनी अजेत्यन्वयबोधः। दुह्यते गौः पयो गोपालकेनेत्यत्र गोपालकवृत्तिकृतिजन्यदोहनजनितफलशालिनी पयोनिमित्ता गोरित्यन्वयबोधः। तथा त्रिविधकर्मकारकमध्ये प्राप्यं कर्म मुख्यम्। निर्वर्त्यं विकार्यञ्च गौणमिति संक्षेपः।

अथ करणलक्षणम्

साधकतमं करणमिति सूत्रम्। तत्र साधकतमत्त्वं कारकान्तरासहकृतत्वे सति फलहेतुत्वम्। कारकान्तरव्यापारमनुत्पाद्य फलहेतुत्वमित्यर्थः। फलं धात्वर्थतावच्छेदकम्। दात्रेण धान्यं छिन्नतीत्यादौ तृतीयायाः करणत्वमर्थः। एवं मनसा पाटलीपुत्रं गच्छतीत्यत्र। अथ धनेन कुलम्, विद्यया यशः इत्यादौ तृतीयायाः हेतुत्वमर्थः। क्रियान्वयित्वाभावात्। एवं धूमादग्निमान्, कृतकत्वादनित्यतावान्। पञ्चम्या ज्ञाप्यत्वमर्थः। तथा च धूमज्ञानज्ञाप्यवह्निमदभिन्नः पर्वत इति कार्यत्वज्ञानज्ञाप्यानित्यत्ववदभिन्न इति बोधः। कृतकत्वं कार्यत्वम्।

अथ सम्प्रदानलक्षणम्

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानमिति सूत्रम्। करणीभूतकर्मजन्यफलभागित्वेन उद्देश्यत्वं सम्प्रदानत्वम्। करणीभूतं तत्क्रियायाः करणीभूतम् इत्यर्थः। दाधातोः स्वस्वत्वध्वंसपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्त्यवच्छिन्नद्रव्यत्यागोऽथवा उद्देश्यगतस्वामित्वसम्पादकत्यागोऽर्थः।

तेन विप्राय गां ददातीत्यत्र विप्रोद्देशकं यद् गोवृत्तिस्वत्वं गोनिरूपितस्वामित्वं वा तज्जनको यस्त्यागः तदाश्रय इति बोधः। नारदाय रोचते कलह इत्यत्र चतुर्थ्याःसम्बन्धत्वमर्थः, तत्र रुच्यर्थानां प्रीयमाणः इति सूत्रम्। तत्र नारदसम्बन्धिनी या रुचिस्तद्विषयः कलह इत्यर्थः। नृपाय श्लाघते वली इत्यत्र चतुर्थ्याः विषयत्वमर्थः। तत्र "श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः इति सूत्रम्। ज्ञीप्स्यमानः आत्मज्ञापनेच्छाविषयीभूतः। नृपविषयकात्मज्ञापनेच्छाविषयीभूतकथनाश्रयोवली इति बोधः। विप्राय शतं धारयति शूद्र इत्यत्र चतुर्थ्याः सम्बन्धित्वमर्थः। तत्र धारेरूत्तमर्ण इति सूत्रम्। तथा च विप्रसम्बन्धिशतसंख्याविशिष्टद्रव्यकर्मक यद् ऋणग्रहणं तदाश्रयः शूद्र इति बोधः। देवदत्ताय क्रुध्यति इत्यत्र चतुर्थ्याः कर्मत्वमर्थः। अत्र "क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः" इति सूत्रम्। तथा च देवदत्तकर्मकक्रोधाश्रय इति बोधः। क्रोधः परविषयकासूयाजनकव्यापारः। द्रोहोऽनिष्टाचरणम्। ईर्ष्या अक्षमा। असूया द्वेषः। पुष्पायस्पृहयतीत्यत्र चतुर्थ्या ईप्सितकर्मत्वमित्यर्थः। तत्र स्पृहेरीप्सित इति सूत्रम्। तथा पुष्पविषयक-स्पृहाश्रय इति बोधः।

अपादानलक्षणम्

तत्र ध्रुवमपायेऽपादानमिति सूत्रम्। अपाये विभागजनकभूतक्रियाया यद् ध्रुवं तत्क्रियारहितं यत्कारकं (तदपादानं) भवतीत्यर्थः। पतनक्रियाजन्यविभागाश्रयत्वम् अपादानत्वम् इति नैयायिकाः। तदपादानं द्विविधम्। चलमचलं चेति। यथा वृक्षात् पततीत्यत्र वृक्षरूपमपादानम् अचलम्। धावतोऽश्वात्पतितोऽश्ववाहकः इत्यत्राश्वरूपमपादानं चलम्। तत्र पञ्चम्या अपादानत्वमर्थः। अपादानत्वमवधित्वम्। तेन वृक्षावधिकाधःसंयोगानुकूला या क्रियातद्वद् पर्णमिति बोधः। एवमश्वाबधिकाधःसयोगानुकूलायाक्रिया तद्वानश्ववाहक इति बोधः। ननु कथमश्वस्यापादानत्वं, पुरुषाश्वयोः विभागं प्रति अश्वक्रियायाः हेतुत्वादिति चेन्न, अश्वक्रियानोभयविभागहेतुः विभागजनकीभूतपुरूषक्रियां प्रति अश्वक्रियाया हेतुत्वात्। हिमवतो गगा प्रभवति, वल्मीकात् प्रभवति धनुरित्यत्र 'भुवः प्रभव' इति सूत्रम्। प्रभव आद्यप्रकृतिः। तेन हिमवत्त्वावच्छिन्नाद्यप्रकृतिकोत्पत्तिमती

गंगा इति बोधः। एवम् अन्यत्रापि। सामग्रीतः फलं जायते इत्यादौ पञ्चम्या हेतुत्वमर्थः। तत्र 'जनिकर्त्तुः प्रकृतिः' इति सूत्रम्। प्रकृतिः फलोत्पत्त्युन्मुखीभूतकारणकलापः। तेन सामग्रीहेतुकोत्पत्तिमत् फलम् इति बोधः। अध्ययनात् पराजयते छात्रः इत्यादौ पञ्चम्या विषयत्वम् अर्थः। तत्र पराजेरसोढ़ः' इति सूत्रम्। परापूर्वकजिधातोः असोढ़ार्थोऽपादानं भवतीत्यर्थः। अत्रासोढ़त्वम् असाध्यत्वम्। पराजयो निवृत्तिः। तेनाध्ययनविषयकनिवृत्तिमान्छात्र इति बोधः। शत्रून् पराजयत इत्यत्र पराजयः पराभवः, शत्रुस्तु पराभवविषय इति न पञ्चमी। कूपादन्धं वारयतीत्यत्रापि अवधित्वमर्थः। तत्र वारणार्थकधातुप्रयोगे ईप्सितमपादानं भवतीत्यर्थः। कूपोऽपि पुरोगस्यदेशत्वेनेप्सितो भवति। तेन कूपावधिकं यन्निवारणं तदनुकूलव्यापारवानिति बोधः। तत्र कूपस्य ध्रुवत्वम्। अन्धकूपयोः संयोगवारणात्। चौराद् विभेति, व्याघ्रादपत्रस्तः, दस्युभ्यो रक्षित इत्यत्र पञ्चम्या हेतुत्वमर्थः। अत्र भीत्रार्थानां भयहेतुरिति सूत्रम्। भयार्थकधातुप्रयोगे त्राणार्थकधातुप्रयोगे वा योहेतुस्तदपादानं भवतीत्यर्थः। तद्हेतोर्यदपादनत्वमुक्तं तत् तृतीयावारणार्थमेव। चौरहेतुकभयाश्रय इति बोधः। भयं भाविदुःखविषयकज्ञानम्। त्राणं दुःखजनकसामग्रीतो मोक्षणम्। तत्राद्यप्रयोगद्वयं भयार्थकं, तृतीयं त्राणार्थकमेव। उपाध्यायादन्तर्धत्ते छात्र इति उपाध्यायान्निलीयते इत्यादावपि पञ्चम्या हेतुत्वमर्थः। तत्राप्यपादानं तृतीयावारणार्थकमेव, 'अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति' इति सूत्रम्। अन्तर्धौ येन हेतुना स्वादर्शनमिच्छति तदपादानं भवतीत्यर्थः। अन्तर्द्धिरात्मगोपनेच्छा। उपाध्यायहेतुकं यदात्मसंगोपनं तद्विषयणी या इच्छा तदाश्रयच्छात्र इति बोधः। उपाध्यायादधीते इत्यत्र पञ्चम्या हेतुत्वमर्थः। तत्राख्यातोपयोग इति सूत्रम्। नियमात् विद्याग्रहणे आख्यातापादानं भवतीत्यर्थः। तत्राप्यपादानत्वविधानं तृतीयावारणार्थमेव। आख्याता वक्ता। तेन उपाध्यायहेतुकं यन्नियमपूर्वकविद्याग्रहणं तदनुकूलकृतिमानिति अन्वयबोधः।

अथाधिकरणलक्षणम्-

तत्राधारोऽधिकरणम् इति पाणिनिसूत्रम्। आधार आश्रयः। कर्तृकर्मान्यतरद्वारा क्रियान्वयित्वे सति क्रियोपकारकत्वम् अधिकर-

णत्वमिति नैयायिकलक्षणम्। अन्यतरद्वारा कर्तृद्वारा कर्मद्वारा वेति अर्थः। उपकारकत्वं निष्पादकत्वम्। तेन गृहे स्थित्वा स्थाल्यामोदनं पचतीत्यत्र सप्तम्या अधिकरणत्वमर्थः। अतः कर्तृकर्मप्रभृतीनाम् अतिव्याप्तिवारणाय कर्तृकर्मान्यतरेति। गृहस्य पाकक्रियाश्रयत्वं तदुपकारकत्वञ्च कर्तृद्वारा, स्थाल्याश्च ओदनरूपकर्मद्वारा क्रियाश्रयत्वम्, तदुपकारकत्वं चेतिबोधः। गृहस्यतु स्थितिक्रियापेक्षयैवेति निष्कर्षः।

अथ समासपदम्—

तत्र समासत्वमखण्डोपाधिविशेषः, न तु कर्मधारयाद्यन्यतमत्वम्। अन्योन्याश्रयात्। नैयायिकमते समासे नैव शक्तिः। न वा लक्षणा। शक्तिलक्षणान्यतरसम्बन्धस्तु पदनिष्ठ एव। तत्तदर्थावगतिस्तु क्वचित् पूर्वपदे क्वचिदुत्तरपदे क्वचिदुभयपदे लक्षणयेति। समासकरणं च पदसंस्कारार्थम् इति बोध्यम्। न तु व्यासकालिक-तत्तद्पदार्थोपस्थितेः क्लृप्तत्वात् शक्तिलक्षणान्यतरसम्बन्धेन समासकालेऽपि तज्जातीयवाक्यार्थबोधानुकूलतत्तद्पदार्थोपस्थितेर्हेतुत्वं कल्प्यम्, लाघवात्। न तु व्यासपदत्वम्। तत्पदस्य वाक्यार्थबोधानुकूलेतरवाक्यत्वादिति। अतिरिक्तापि शक्तिः न कल्प्या, गौरवात्। न तु नित्यसमासस्थले पंकजादिपदे का गतिः? तत्र व्यासाभावेन क्लृप्तशक्तिकपदाभावादिति चेन्न तत्रोभयोः समाधानसाम्याद्। तथाहि समुदायशक्त्यनुरोधात् समुदायस्यपदत्वम्। अस्माभिरवयवशक्त्यनुरोधात् पदैकदेशत्वस्यापि पदत्वं कल्पनीयमिति। अतएव यत्रोभयोः समोदोषः परिहारोऽपि तत्समः इति प्रवादोऽपि साधुरिति।

समानविभक्तिमत्पदप्रकृतिकत्वे सति द्विगुभिन्नत्वे सति अभेदबोधकत्वं कर्मधारयत्वम्। तत्र नीलोत्पलम् इत्यत्र नीलपदेन नीलरूपविशिष्टं वस्तूत्पलपदेन उत्पलसामान्यमुपस्थाप्यते अभेदाख्यसंसर्गद्वारा नीलाभिन्नमुत्पलमिति शाब्दबोधः। नामार्थद्वयाभेदबोधं प्रति विरूद्धविभक्तिराहित्यस्य कारणत्वमेव। अतएव कर्मधारये न वा शक्तिः नवा लक्षणेति प्रसिद्धिः। अतएव निषादस्थपतिं याजयेदित्यत्र न षष्ठीतत्पुरुषः, न बहुव्रीहिः, पूर्वपदे परपदेवा लक्षणापत्तेः। तत्र

कर्मधारयसमासात् निषादात्मकस्थपतियाजनबोधः, न च निषादस्य संकरजातिविशेषात् याजनासम्भव इति वाच्यम्। विद्या-प्रयुक्तेस्तत्र कल्प्यत्वात्। विद्या-प्रयुक्तिस्तु निषिद्धकर्ममन्त्रपठनम्।

अथ तत्पुरुषः–

असमानविभक्तिमत्पदप्रकृतिकत्वे सत्यभेदबोधकपदत्वं तत्पुरुषत्वम्, राजपुरुष इत्यत्र पूर्वपदेलक्षणया सम्बन्धित्वसवगम्यते। तेन राजसम्बन्ध्यभिन्नः पुरुष इति बोध। नामार्थद्वयाभेदबोधं प्रति विरुद्धविभक्तेरभावस्य तत्रोक्तत्वात्। अन्यथा पुरुषपदार्थे राजपदार्थस्य साक्षादन्वयोनस्यात्। विभक्त्यर्थाद्वारकत्वे सति निपातातिरिक्तनामार्थयोर्भेदसम्बन्धेन साक्षादन्वयस्याव्युत्पन्नत्वात्। तथा च तादृशबोधं प्रति प्रकारीभूतविभक्तिरपेक्षणीयेति बोध्यम्। न च राजपुरुष इत्यत्र पुरुषपदे राजसम्बन्धिनि लक्षणा। राजपदं तु तात्पर्यग्राहकमिति वाच्यम्। उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः इति व्युत्पत्तेर्विरोधात्। पूर्वपदस्य निरर्थकत्वात्। अतएव चन्द्र इव मुखमित्यत्र इवार्थान्वयबोधे चन्द्रपदोत्तरं षष्ठीत्यज्यते। प्रथमा च साधुत्वार्था। न च दधि पश्यतिवत् लुप्तविभक्तिरनुसन्धानेनैव तादृशबोधः सुलभः इति वाच्यम्। तदनभिज्ञस्य तादृशबोधाभावादनन्वयापत्तेः। राज्ञः पुरुष इत्यत्र राजपदेन राज्ञः, षष्ठया सम्बन्धस्य, पुरुषपदेन पुरुषस्याश्रयत्वसंसर्गेणोपस्थितौ राजसम्बन्धाश्रयपुरुष इति बोधः।

अथ द्विगुः

समानविभक्तिमत्पदप्रकृतिकत्वे सत्यभेदबोधकसंख्यापूर्वकपदत्वं द्विगुत्वम्। 'पञ्चांङ्गुलम्' इत्यादौ पञ्चानामंगुलानां समाहार इति बोधः। समाहारोऽपेक्षा-बुद्धिविषयत्वम्, तेनाङ्गुलपदेन लक्षणया पञ्चांगुलसमाहारो बोध्यते। पञ्चपदं तात्पर्यग्राहकम्।

अथ बहुव्रीहिः–

नञ्तत्पुरुषभिन्नत्वे सति लाक्षणिकोत्तरपदकत्वं बहुव्रीहित्वम्। चित्रगुरित्यत्र गोपदं गोस्वामिनि लाक्षणिकम्। चित्रपदार्थस्यापरपदार्थैकदेशेनाभेदान्वयः। तेन चित्राभिन्नगोस्वामीत्यन्वयबोधः।

अथवा गोपदं चित्राभिन्नगोस्वामिनि लाक्षणिकम्। चित्रपदं तात्पर्यग्राहकमिति। तेन पदार्थः पदार्थेनान्वेति नतु पदार्थैकदेशेनेतिव्युत्पत्तेर्न भङ्गः। नतु चित्रगुरित्यादौ विनिगमनाविरहेणोभयपदे च लक्षणा कथं नोच्यत इति चेन्न, शक्तिपदसमभिव्याहारं बिना लाक्षणिकपदस्यानुभावकत्वाऽभावात्। न च पूर्वपदे लक्षणेति वाच्यम्, उत्तरपदार्थस्य लाक्षणिकार्थे साक्षादनन्वयित्वात्। न चोत्तरपदं तात्पर्यग्राहकमिति वाच्यम्। पूर्वपदोपस्थापकत्वाभावात्। नञ्‌तत्पुरुषस्थलेषु अब्राह्मण इत्यत्र ब्राह्मणपदेन ब्राह्मणेतरे लक्षणा, नञ्‌पदं तात्पर्यग्राहकमित्यतो नञ्‌ततपुरुषभिन्नत्वे सति इति विशेषणमिति।

अथ द्वन्द्वः–

पदजन्यप्रतिपत्तिविषयबोधकत्वे सति समानविभवितसप्तकप्रकृतिकत्वं द्वन्द्वत्वम्। स च द्वन्द्वश्चार्थे। चकारार्थो भेदः। तत्र किं पदार्थभेदेथवा पदार्थतावच्छेदकभेदे शक्तिः। तत्र नाद्यः, प्रमाणप्रमेयेत्यादिगौतमन्यायसूत्रेऽप्येकदन्तहेरम्ब' इत्यादि-पर्याये नीलघटयोरभेदसत्त्वेऽपि द्वन्द्वदर्शनात्। नान्त्यः, घटा इति सरूपैकशेषे द्वन्द्वापवादके व्यभिचारात्। कथमन्यथा द्वन्द्वापवादकत्वं तस्य, उत्सर्गापवादयोः समानविषयकत्वेन नियतत्वात्। न च घटा इति सरूपैकशेषे किं प्रमाणमिति वाच्यम्। सकृदुच्चरितादिव्युत्पत्त्या चतुरादिघटोपस्थापकत्वाभावाद् तस्य। न च घटपदात् घटत्वप्रत्यासत्त्या घटमात्रोपस्थितौ तात्पर्यवशात् त्रिचतुरादिघटोपस्थितिः किं तेनेति वाच्यम्। हरय इत्यत्र तस्या अशक्यत्वकल्पनात्। नहि अत्र हरित्वमेकमस्ति। घटा इति सर्वादिसिद्धैकशेषे लोपाप्रसङ्गाच्च। अतएव वदन्ति क्वचित् पदार्थभेदे क्वचित् पदार्थतावच्छेदकभेदे द्वन्द्वस्य दर्शनादुभयभेदेऽपि शक्तिः। न चाननुगता जातिः। पदजन्यप्रतिपत्तिसमासाधिकारसामान्यभावात्।

स च द्विविधः–इतरेतरः समाहारश्च। इतरेतरस्थले साहित्यं विशेष्यत्वेन भासते। समाहारे तु विशेषणत्वेनैवेति विशेषः। साहित्यमेकक्रियान्वयित्वं तद् यथाः—'धवखदिरपलाशान् छिन्धिः' इत्यत्र धवखदिरपलाशप्रतियोगिकं यत्साहित्यं तन्निरूपितं यदवयवविभागरूपं फलं तज्जनिका या छेदनक्रिया तदनुकूलकृतिमांस्त्वम्

इति शाब्दबोधः। तन्निरूपितं समानाधिकरणम्। धवखदिरपलाशं छिन्धि इत्यत्र साहित्याश्रयावयवादिवृत्ति यत् फलं तज्जनिका या क्रिया तदनुकूलकृतिमांस्त्वमिति शाब्दबोधः, अथवा इतरेतरस्थले द्वित्व-बहुत्वप्रकारकपदार्थोपस्थितिः। समाहारे तु प्रत्येकपदार्थगतमेकत्वं भासते। न तूभयत्र साहित्यम् एकक्रियान्वयित्वरूपं भासते। न च सहभावविवक्षायां वृत्तिर्द्वन्द्वैकशेषयोरितिव्युत्पत्तेः का गतिरिति वाच्यम्। तत्रापेक्षाबुद्धिविषयत्वरूपसाहित्यावगतत्वादिति।

अथाव्ययीभावः

समासग्रस्तत्वे सति नानाविभक्तिषु एकरूपतावदव्ययत्वम् अव्ययीभावत्वम्। तत्र पूर्वपदार्थस्यैव प्राधान्यं भासते। उपकुम्भमित्यत्र कुम्भावधिकान्यदेशसंयोगीति बोधः इति संक्षेपः।

अथ निर्द्धारणम्

तत्र जातिगुणक्रियान्यतमेन समुदायादेकतमस्य पृथककरणं निर्द्धारणम्। पृथक्करणं विलक्षणधर्मवत्त्वेन, एवं यत्पदसमभिव्याहृता षष्ठी तदुपस्थाप्य-तदन्यपदार्थसमुदायेतद्धर्मवत्त्वाभावः षष्ट्या उपस्थाप्यत इति बोध्यम्। तत्र क्रमेणोदाहरणं 'नराणां क्षत्रियः शूरतमः' इति नरसामान्यमध्ये क्षत्रियत्वावच्छिन्ने नरे शूरतमत्वं। एतदन्यनरे तदभाव इत्यन्वयबोधः। एवं गवां कृष्णा सम्पन्नक्षीरतमा इति गोसामान्यमध्येकृष्णरूपवत्यां गवि सम्पन्नक्षीरतमत्वम्। न त्वन्यगवि तदभाव इति भावान्वयबोधः एवमध्वगानां रथारूढाः शीघ्रगा इत्यध्वगसामान्यमध्ये रथारूढा अध्वगाः शिघ्रगा स्तदन्याध्वगामिनि तदभाव इत्यभावान्वयबोधः।

अथ एवकारविचारः

तस्य व्यवच्छेदत्वमेव शक्यतावच्छेदकम्। व्यवच्छेदः शक्यः। विशेषस्तु क्रियासमभिव्याहृतस्यैवकारस्यात्यन्तायोगव्यवच्छेदे विशेषणसंगतैवकारस्यायोगव्यवच्छेदे विशेष्यसगतैवकारस्यान्ययोगव्यवच्छेदे च सम्बन्धेन नीलभवनात्यन्तायोगव्यवच्छेदप्रकारकसरोजविशेष्यको बोधः। एवं सति सरोजं क्वचिन्नीलं क्वचिदनीलं भवति। शंखः

पाण्डुर एवेत्यत्र अन्वयितावच्छेदकशंखत्वावच्छेदेनपाण्डुरत्वायोगव्यवच्छेदान्वयः। तथा च शंखत्वव्यापकत्वविशिष्टस्वरूपसम्बन्धेन पाण्डुरत्वाव्यवच्छेदप्रकारकशंखत्वावच्छिन्नविशेष्यको बोधः। प्रार्थ एव धनुर्धरः इत्यादौ विशेष्यसंगतैवकारस्थले धनुर्धरपदेन पकृष्टधनुर्धरे लक्षणा। पार्थँ प्रकृष्टधनुर्धरत्वं तदन्यस्मिन् तदभाव इति पार्थो धनुर्धरस्तदन्योन। अथवा धनुर्द्धरे पार्थान्यतादात्म्यव्यवच्छेदश्चेति। तथा च पार्थत्वविशिष्टविशेष्यरूपार्थत्वव्याप्यप्रकृष्टधनुर्धरत्वसमानाधिकरणविशेषणसम्बन्धेन धनुर्धरान्ययोगव्यवच्छेदप्रकारकोबोधः।

अथ सर्वनामपदशक्तिविचारः–

तस्य शक्यं घटादिकं शक्यतावच्छेदकञ्च घटत्वादिकम्। तमानयेत्यत्र शक्तिग्रहपदार्थोपस्थितशाब्दबोधानां घटत्वादिप्रकारकत्वात्। तेषां समानप्रकारकत्वेनैव कार्यकारणभावात्बुद्धिविषयत्वेनैव तेषामनुगमः। बुद्धिविषयवृत्तित्वेनैव शक्यतावच्छेदकानां चानुगम इति शेषः। तथा च हरिपदादिवत् नानार्थमेव। तात्पर्यग्रहस्तु प्रकरणादिवशाद् पूर्वसंकेतोपस्थितिरिति नैयायिकाः। केचित्तु सर्वनामपदस्य क्वचित्प्रकान्ते क्वचित्प्रकंस्यमाने शक्तिः उभयोरनुगमकं बुद्धिविषयत्वम्। तदेवशक्यतावच्छेदकमित्याहुः।

अथ इवशब्दविचारः–

चन्द्र इव मुखमित्यत्र चन्द्रपदं चन्द्रपरम्। इवपदं सादृश्यपरम्। प्रतियोगित्वं संसर्गः। चन्द्रस्य प्रतियोगितया सादृश्येऽन्वयः। सादृश्यमाश्रयतया मुखेऽन्वयः। तथा च चन्द्रप्रतियोगिकसादृशाश्रयं मुखमिति बोधः। चन्द्रमिवमुखं पश्यामीत्यत्र द्वितीयानुपपत्तिः चन्द्रमुखयोरभेदाभावाद्। अतएव चन्द्रपदं चन्द्रसादृशे लाक्षणिकम्। इव पदं तात्पर्यग्राहकम्। चन्द्रपदोत्तरद्वितीयाविशेषणविभक्तित्वेनाभेदबोधकत्वात् चन्द्रसादृशाभिन्नमुखमहं पश्यामीति बोधः। निपातातिरिक्तनामार्थयोर्भेदेनान्वयबोधं प्रति प्रकारीभूतविभक्त्यर्थोपस्थितेस्तत्रोक्तत्वात्। तेन इवार्थान्वयबोधो न षष्ठ्यपेक्षः। प्रथमा तु साधुत्वार्थेति निष्कर्षः।

अथ उद्देश्यविधेयबोधविचारः—

यत्रोद्देश्यतावच्छेकविधेयतावच्छेदकयोः सामानाधिकरण्यं भासते, तत्रैबोद्देश्यविधेयबोधः। तेन घटः नीलरूपवान् इत्यत्र घटत्वनीलरूपयो सामानाधिकरण्यमवभासते। एवमुद्देश्यवाचकपदप्रयोगः प्रागेव कर्तव्यः। अन्यथा नीलरूपवान् घट इत्यत्र घटोद्देश्यकरूपविधेयको बोधःस्यात्, किन्तु नीलरूपवदुद्देश्यकघटत्वबिधेयकबोध एव भवतीति। प्रकृतिविकृतिभावेऽप्येवं नियमोबोध्यः। यथा एको वृक्षः पञ्चनौका भवतीत्यत्र वृक्षपदं नौकारम्भकद्रव्यपरम्। तेन नौकारम्भद्रव्यं पञ्चनौकारम्भकद्रव्याभिन्नं भवतीति बोधः। एवमेकसुवर्णं दशकुण्डलानि भवतीत्यादावपि बोधः। यूपायदारू इत्यत्र दारूपदं दार्वारम्भकद्रव्यपरम्। चतुर्थ्या उद्देश्यत्वं मर्थः, जनकत्वं च। तेन यूपजनकदार्वारम्भकद्रव्यमितिबोधः। रन्धनाय स्थाली इत्यत्र प्रकृतिविकृतिभावेऽपि चतुर्थ्याः केवलमुद्देश्यत्वमर्थः। तेन रन्धनोद्देशकस्थालीयमिति बोधः इत्येवमेव तादर्थे चतुर्थी।

अथोपसर्गबिचारः—

तत्रोपसर्गस्य वाचकत्वं नास्ति। किन्तु द्योतकत्वमेव। क्लृप्तशक्तिकधातोरेकार्थविशेषे तात्पर्यग्राहकत्वात्। प्रजयन्तीयत्र जिधातोरेव जयेशक्तिः। प्रकृष्टजये लक्षणा। उपसर्गस्य तात्पर्यग्राहकत्वम्। प्रकृष्टजयबोधः। अथवा जिधातोः प्रकृष्टजये शक्तिः। सा च प्रोपसंधानेनैव बोध्यते। तथा चात्र औपसंधानिकी शक्तिः। न च प्रतिष्ठत इत्यत्र प्रकृष्टस्थित्याश्रय इति बोधः कथं न जायते इति वाच्यम्। तत्रस्थितिविपरीतगमनार्थोपस्थितत्वात्। धातूनां प्रोपसंधानेनैव लक्षणया वा तादृशार्थो बोध्यते। अपि च प्रजयतीत्यत्र प्रकृष्टजये यदि धातोर्न शक्तिस्तदा प्रकृष्टजयाश्रयत्वेन बोधः (न)। प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थबोधकत्वं प्रत्ययानामिति व्युत्पत्तेः श्रवणादिति।

अथ क्त्वाप्रत्ययविचारः—

तत्रानन्तर्यं एव तस्य शक्तिः। भुक्त्वा व्रजतीत्यत्र भोजनान्तरं व्रजनस्यानुभवसिद्धत्वात्। न च भोजनव्रजनयोः समानकालिकत्वम्।

व्रजनपूर्वकाले भोजनस्यैवावगाहनात्। समानकर्तृकत्वं तु आक्षेपलभ्यम्। न च झणकृत्य पतति, मुखं सम्मील्यहसति मुखं व्यादाय स्वपितीत्यादौ नेह स्वपनादीनां कथमानन्तर्यम्। पतनाद्यनन्तरमेव झण्काराद्युपलब्धेरितिवाच्यम्। झण्काराद्यनन्तरमपि पतनादीनां सत्वान्नकोऽपि दोष इति निष्कर्षः।

अथ नञर्थकथनम्—

तत्र नञः संसर्गान्योन्याभावौ। तत्रायं नियमः कथ्यते। यत्रविशेष्यविशेषणयोरभेदान्वयबोधस्तत्र अन्योन्याभावो नञाबोध्यते। यथाऽयं घटो नीलो नायं नीलघट इत्यत्र नीलघटयोरभेदोभासते इति अभावान्वये घटे नीलघटभेदो भासते। अतएव यजतिषु यजामह कुर्यान्नानुयाजेष्वित्यनुयाजभिन्नेषु यजतिष्वेवेति यजामहस्य कर्तव्यता भासते। यत्र तु प्रतियोग्यनुयोगिनो भावान्वयेभेदो भासते तत्र संसर्गाभावो नञाबोध्यते। यथा भूतले घटः, भूतले घटो नास्ति, पचति चैत्रः, न पचति चैत्रः, चैत्रस्येदम्, नेदं चैत्रस्य इत्यादौ भूतलाद्यनुयोगिनि घटवृत्तिसत्तानां भेदो भासते। तेन भूतलवृत्तिघटाभावः, पाकानुकूलकृत्यभाववान् चैत्रः, चैत्रसम्बन्धत्वाभाववदिदम्। इत्यादि बोध एव। अत्रापि विशेषः। यत्रानुयोगिनिनामार्थप्रतियोगिकसंसर्गाभावबोधः, तत्रावश्यम्, अनुयोगिपदे सप्तम्यपेक्षा कर्तव्या। अत्राभावद्वयेऽन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं व्युत्पत्या भासते। नीलघट इति भूतले घटोनास्ति; एवं नीलोघटो न घट इत्यप्रतीतेः। पीतघटवति भूतले नीलघटो नास्ति। एवं पीतघटो न नीलघट इत्यादिप्रतीतेश्च।

एवं नञः कुत्रचित् प्रसज्यप्रतिषेधे शक्तिः, कुत्रचित् पर्युदासबोधकत्वम्। यथा एकादश्यां न भुञ्जीत इत्यत्र भोजनस्य रागत एकादश्यामपि प्रसक्तै तत्र प्रसज्यपतिषेधोबोध्यते। नहि एकादशीभिन्ने भुञ्जितेति पर्युदासविधिः। भोजनस्य केवलं रागप्राप्तत्वात् कथं पर्युदासविधिः। द्वितीयं यथा अथामावस्यायांश्राद्धं पितृभ्यो दद्यादिति सामान्यशास्त्रम्। तदनु रात्रौ न कुर्वीत, सन्ध्ययोरुभयो रपीति विशषेनिषेधस्तु पर्युदासविधिः कल्प्यते। तेन रात्रिसन्ध्येतरामावस्यायां पितृभ्यो दद्यादिति पर्युदासो लभ्यते। न तु निषेध-

विधित्वेन रात्रिसन्ध्याधिकरणकश्राद्धनिषेधोऽवगम्यते। सामान्यशब्दस्य रात्रिसन्ध्यांशेऽबाधापत्तेः। एवं न संगोत्रांभार्यां विन्देत इत्यत्र यदा च परिवेदनस्य शास्त्रतः प्राप्तिस्तदा पर्युदासविधिः। यदा तु रागतः प्राप्तिस्तदा प्रसज्यप्रतिषेध एवावगम्यते। केचित् अतिरात्रो षोडशिनं गृह्णीयान्नातिरात्रो षोडशिनमितिवत् अत्रापीच्छाविकल्प इति मन्यन्ते। तन्न। तत्र तुल्यबलत्वादत्रतु सामान्यविशेषभावेनातुल्यबलत्वात् इति निष्कर्षः।

अथावैधहिंसाविचारः—

मा हिंस्यात् सर्वाणि भूतानीति सामान्यं शास्त्रम्। वायव्यं श्वेतमालभेत इति विशेषशास्त्रम्। अतएव हिंसायां विधिनिषधयोरवस्थानेन विरोधात् सामान्यशास्त्रं विशेषशास्त्रेण बाध्यते। विरोधे हि बलीयसाऽल्पबलं बाध्यते। विशेषशास्त्रं तु बलीयोनिरवकाशत्वात्, सामान्यशास्त्रं त्वल्पबलं सावकाशात्। तेन सामान्यशास्त्रस्य वैधेतरविषयत्वं कल्प्यते। पदार्थान्तरसाकांक्षोविशेष इति न्यायात्। तथा च वैधेतरहिंसायाः एव नरकजनकत्वमिति कल्प्यते टीकाकृता। मिश्रमते तु सामान्यविशेषशास्त्रयोर्नविरोधोभिन्नविषयत्वात्। तथाहि मा हिंस्यादिति हिंसाया अनर्थहेतुतावाप्यते। विशेषशास्त्रे हिंसायां क्रतुप्रकारकत्वं बोध्यते। अतएव वैधेतरहिंसायामपि नरकजनकत्व कल्प्यम्। हिंसायाः क्रतुप्रकारकत्वम्। न तु साक्षात् स्वर्गजनकत्वम्। किन्तु क्रतोरेव स्वर्गजनकत्वम्। उत्तरविशेषविध्यभिधानादिति।

एवं यत्र सामान्येविधिर्निषेधोवा, तत्र सामान्यस्य विशेषपरत्वं कल्प्यते। पदार्थान्तरसाकांक्षं विशेषमपहाय तदितर एव सामान्यमन्वेतीति व्युत्पत्तेः। यथा ब्राह्मणाय दधि दातव्यम्। कौण्डिन्याय न दातव्यमित्यत्र ब्राह्मणसामान्यस्य कौण्डन्येतरपरत्वं भासते। प्रकृते तु ब्राह्मणसामान्यंदधिदाने साकांक्षम्। कौण्डिन्यस्तु तदभावे साकांक्ष इति सामान्ये तदितरपरत्वं कल्प्यते। एवं ब्राह्मणेभ्यो दधि दातव्यं तक्रं कौण्डिन्याय। यत्र दध्यपेक्षयापदार्थान्तरं तक्रमित्यतो ब्राह्मण सामान्यस्य तदितरपरत्वं भासते। तेन कौण्डिन्यस्य ब्राह्मणत्वपुरस्कारेण दधिदानं न प्रसज्यते। अत एवेयं व्युत्पत्तिः विधिनिषेधयोः

सामान्यविशेषविध्यनुज्ञाफलकत्वमिति। एवं मा हिंस्यात् सर्वाणि भूतानि, वायव्यं श्वेतमालभेत, इत्यत्रापि हिंसासामान्यं निषेधसाकांक्षं हिंसाविशेषस्तु विधौ साकांक्ष इत्यतो हिंसा-सामान्यस्य वैधेतरत्वेन वैधेतरहिंसैवानर्थहेतुरिति निष्कर्षः।

अथ पदशक्तिनिरूपणम्–

सा चास्माद् शब्दादयमर्थो बोधव्य इतीश्वरेच्छा। आधुनिकेसंकेते तु आधुनिकसंकेत एव शक्तिः। अथवा तत्रापीश्वरेच्छावर्त्तते। सर्वत्रैव ईश्वरेच्छाविशेष एव शक्तिरिति निष्कर्षः। सा च जातिविशिष्टे कल्प्यते। विशिष्टस्यानुरोधात्। तत्र जातेः प्रकारतया, व्यक्तेः विशेष्यतया, वैशिष्ट्यस्य संसर्गतया पदेनोपस्थितिरिति नैयायिकाः। वैयाकरणमतेऽपि घटत्वविशिष्टे शक्तावपि घटत्वमपि तदर्थः। तेन जन्येनरूपेणज्ञाते भवति लक्षणेति संगच्छते। कस्यचिन्मते व्यक्तावेव-शक्तिः जातिरवच्छेदिका। व्यक्तेरननुगतत्वात्। जात्यवच्छेदेन व्यक्तौ शक्तिग्रहः। तद्रूपेणैव शक्तिग्रहे पदार्थोपस्थितिद्वारा शाब्दबोधादिति। मीमांसकास्तु जातावेव शक्तिः। लाघवात्। व्यक्त्यन्वयबोधस्तु जातौ शक्त्यनुभवादिति। अथाकारादिपञ्चाशद्वर्णानां प्रत्येकं कुत्रशक्तिः? न तावत्तेष्वेव। अभेदेनैव वाच्यवाचकभावाभावात्। किन्तु एकाक्षरकोशोक्त-वासुदेवादिष्वेव शक्तिरिति निष्कर्षः। यदा तु पदशक्तिः पदार्थे दृश्यते तदैव पदशक्त्या पदार्थानामनुभवः। तदनन्तरं शाब्दबोधकाले पदज्ञानं, शक्तिस्मरणतया पदार्थस्मरणम्। ततः शाब्द-बोध इति।

अथ शक्तिग्रह-निरूपणम्–

तत्रकारिका :—

"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्यात् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्यवृद्धाः॥"

तत्र क्रमेणोदाहरणम्। व्याकरणेन धातुप्रकृतिप्रत्ययादीनां शक्तिग्रहो जायते। यथा पाचक इति। गौरिव गवय इत्यत्र उपमानेन गवयपदस्य गोसादृश्यवति गवये शक्तिग्रहो भवति। कोषेण पर्याय-

नानार्थपदानां तत्तदर्थेषु शक्तिग्रहो भवति। पिकः कोकिल-पदवाच्यो भवतीत्याप्तवाक्येन कोकिलपदस्य पिके शक्तिग्रहो जायते। आप्तस्तु प्रकृतवाक्यार्थगोचर-यथार्थज्ञानवान्। षष्टचा तु दिवसै र्मासः कथितो बादरायणैरित्यत्र मासपदस्य षष्टिदिवसेऽपि शक्तिग्रहो जायते। व्यवहारेण यथा-प्रयोजकवृद्धेन घटमानय इत्युक्तम्। तत् श्रुत्वा प्रयोज्यवृद्धेन घट आनीतस्तदवधार्य पार्श्वस्थोबालो घटानयनरूपं कार्यं घटमानयेति शब्दप्रयोज्यमित्यवधारयति। तदनन्तरं पटमानयेति वाक्यात् पटानयनरूपं कार्यं पटमानयेति शब्दप्रयोज्यमित्यवधारयति। तदनन्तरं घटपदं घटे शक्तम्। पटपदं पटेशक्तम्। द्वितीयापदं कर्मतायाम्, आङ्पूर्वणीपदमानयने, हि पदं कृतौशक्तमिति विच्छिन्नशक्तिग्रहो व्यवहारेण जायते। वाक्यशेषेण यथा-यवमयश्चरुर्भवतीत्यत्र यदि यवस्य दीर्घशूकेआर्याणां प्रयोगः। कङ्गौ तु म्लेच्छानाम्। कङ्गुर्नाम धान्यविशेषः। वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशातनम्। मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः इति वाक्यशेषात् दीर्घशूक एव शक्तिग्रहो जायते। कङ्गौ तु भ्रमात् म्लेच्छानां प्रयोगः। विवरणादपिः-विवरणं शब्दान्तरेण तदर्थकथनम्। घटो नास्ति इत्यस्य कलशोनास्ति इति विवरणेन घटपदस्य कलशे शक्तिग्रहो भवति। एवं सिद्धपदस्य सान्निध्यतोऽपिः-इह सहकारतरौ मधुरं पिको रौतीत्यत्र प्रसिद्धसहकारपदसान्निध्यात् पिकपदस्य कोकिलेशक्तिग्रहो जायते।

अथ शब्दविचारः-

सच द्विविधो वर्णात्मको ध्वन्यात्मकश्चेति। तत्र वर्णात्मकः साधुशब्दः। सोऽपि द्विविधः, वाचको लाक्षणिकश्चेति। वाचकोऽपि चतुर्विधः यौगिकः, रूढः, योगरूढः, यौगिकरूढश्चेति भेदात्। यत्र समुदायशक्तिनैरपेक्षेण अवयवशक्त्यैव पदार्थोपस्थितिः स एव यौगिकः। यथा-पाचकादि, पाककर्त्तृ-वपुरस्कारणोपस्थितिः। यत्रावयवनैरपेक्षेण समुदायशक्त्यैव पदार्थोपस्थितिः स एव रूढः। यथा-मण्डपादि देवगृहे रूढम्। मण्डपानकर्त्तरि मण्डपपदं लाक्षणिकम्। यत्र तु अवयवसापेक्षेण समुदायशक्त्या पदार्थोपस्थितिः स एव योगरूढः। यथाः-पंकजादिः। पङ्कजनिकर्तृत्वं पद्मत्वं च शक्यतावच्छेदकम्। यत्र तु केवलावयवशक्त्या कुमुदोपस्थितिः केवलसमुदायशक्त्या स्थलपद्मो-

पस्थितिर्वा तत्र पङ्कजपदं लाक्षणिकमेव। यत्र तु योगार्थरूढ्यर्थयोः युगपत्स्वतन्त्रेणोपस्थितिः स च यौगिकरूढः। यथा–उद्भिदादिः। तेन युगपदेवोभयशक्त्या उभयोपस्थापकत्वम्। उर्ध्वभेदनकर्तृत्व-रूपेणावयवशक्त्या तरूगुल्मादिः समुदायशक्त्या वृक्षविशेषश्च बोध्यते। स च वाचकश्चतुर्विधः–द्रव्यगुणजातिक्रियाभेदाद्, यथा–डित्थडवित्थादिपदं केवलं द्रव्यवाचकम्। नीलपदं केवलं गुणवाचकम्। घटपटादिकं जातिवाचकम्। अध्येता पाचकादिपदं क्रियावाचकम्।

अथ चतुर्विधवाचकलक्षणम्

समुदायशक्तिनिरपेक्षावयवशक्तिमत्पदं यौगिकत्वम्। यथा पाचकादि। अवयवशक्तिनिरपेक्षसमुदायशक्तिमत्पदत्वं रूढत्वम्। यथा मण्डपादि। अवयवशक्तिसापेक्षसमुदायशक्तिमत्पदत्वं योगरूढ़त्वम्। यथा पंकजादि। स्वतन्त्रोभयशक्तिमत्पदत्वं यौगिकरूढ़त्वम्। यथा–उद्भिदादि उर्ध्वभेदनकर्तृवृक्षविशेषश्च स्वतन्त्रेण बोध्यते।

साक्षात् संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते, स वाचकः। अस्यार्थः–संकेतितमर्थं यः साक्षाद् अभिधत्ते, अव्यवधानेनोपस्थापयति, स एव वाचकः। अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इत्युपदेशनं संकेतः। तेन ईश्वरसंकेताधुनिकसंकेतयोः संग्रहः। ईश्वरसंकेतितो घटपटादिः, आधुनिकसंकेतितो चैत्रमैत्रादिः। लक्षणया योऽर्थ उपस्थाप्यते न तु साक्षादस्योपस्थितिः। स एव लाक्षणिकः। मुख्यार्थबाधादिसहकृतत्वात्। वृत्तिर्द्विविधा शक्तिर्लक्षणा चेति। तत्र शक्तिर्निरूपिता। अधुना लक्षणोच्यते। तथा च लक्षणावृत्तिमत्पदत्वं लाक्षणिकम्। सा च लक्षणा यथा–

मुख्यार्थबाधेतद्योगे रूढ़ितो वा प्रयोजनात्।
अन्यार्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणाऽऽरोपिताक्रिया॥

अस्यार्थः—मुख्यार्थबोधतद्योगयोः सत्त्वे रूढ़िनिमित्तं प्रयोजननिमित्तं वा यत् यया वृत्त्याऽन्यार्थोलक्ष्यते उपस्थाप्यते, सैव वृत्तिर्लक्षणेति। सैवलक्षणा मुख्यार्थसंबन्धः। स च सम्बधो यदा पदस्यान्यपदार्थे गृहीतः, तदैव पदसम्बन्धात् पदार्थानामनुभवः। तदनन्तरं शाब्दबोधकाले पदश्रवणं तथा पदार्थस्मरणम्। ततः शाब्दबोधः। तेन

क्वचित् रूढ़िहेतुका, क्वचित् प्रयोजनहेतुकाऽऽरोपिता क्रिया लक्षणा। आरोपितशब्दव्यापारोलक्षणेति यावत्। तत्र रूढ़िहेतुका यथा- कर्मणि कुशल इत्यत्र मुख्यार्थस्य दर्भग्रहणादेरयोगे विवेचकत्वादौ च तत्सम्बन्धसत्वे कार्यनिपुणे लक्षणा। रूढ़ितः प्रसिद्धत्वात्। यत्र तु पदान्तरसमभिव्याहारं विना केवलकुशलपदं प्रयुज्यते, तत्रावयवशक्त्या कुशग्रहणकर्त्तरि शक्तमिति बोध्यम्। एवं देवपदसमभिव्याहारं विना यत्र तु मण्डपपदं प्रयुज्यते तत्रवाचनिकम्। प्रयोजनहेतुका यथा-गंगायां घोषः प्रतिवसतीत्यत्र मुख्यार्थस्यनिवासस्ययोगे सामीप्या- त्मकतत्सम्बन्धसत्वे तीरे लक्षणा। शैत्यपावनत्वादिहेतुः कल्प्यते। गंगातटे घोषः प्रतिवसतीत्यत्र तादृश प्रयोजनानवगते न लक्षणादरः क्रियते। यत्र तु प्रयोजनं च विना लक्षणा क्रियते तत्र गौणिलक्षणा। यथाऽग्निर्माणवकः। मञ्चाः क्रोशन्तीत्यत्रान्वयानुपपत्त्या मञ्चपदेन मञ्चस्थपुरुषे लक्षणा। कुन्ताः प्रविशन्तीत्यत्रान्वय-सत्वेऽपि तात्पर्या- नुपपत्त्या कुन्तपदेन कुन्तधरे लक्षणा इति प्राचीनाः। नव्यास्तु सर्वत्रता- त्पर्यानुपपत्तिरेव बीजमिति। पुनर्लक्षणा द्विविधा अजहत्स्वार्था जहत्स्वार्था चेति, काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र काकपदं दध्युपघात- कत्वेन काककुक्कुरादि-सर्वमुपस्थाप्यते काकपदेन। एवं गंगायां घोषः प्रतिवसतीत्यत्र जहत्स्वार्थैव। तेन गंगापदेन तीरमेवोपस्थाप्यते।

अथ वीप्सा-विचारः-

तत्र वीप्सा व्यापकता। तद्विधाने द्विवचनं साधु। तत्र यद्पदस्य द्विरुक्तिस्तदर्थतावच्छेदकनिरूपितसमभिव्याहृतपदोपस्थाप्यपदार्थव्या- पकता बोध्यते। यथा-'गृहे गृहेऽश्वः', इत्यत्र गृहपदं गृहैकदेशपरम्। तेन गृहत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वम् अश्वे बोध्यते। एवं कृष्णपक्षेषु श्राद्धं कुर्यात् दिने दिने इत्यत्र दिनपदं तिथिपरम्। तेन तिथित्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं श्राद्धे भासते। एवमहरहः सन्ध्यामुपासीत इत्यत्राहःपदं सन्ध्यावन्दनाकालत्वपरम्। तथा च तत्कालोपाधिमत्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं सन्ध्यावन्दने भासते।

अथ शाब्दबोधान्तरम्—

आत्मनः पुत्रमिच्छतीत्याद्यर्थे सुप आत्मनः क्यजित्यादिना क्यच्-प्रत्ययः। तेन पुत्रीयति इति सिद्धम्। तेन पुत्रपदोत्तर क्यचिप्रत्ययस्यात्मसम्बन्धिपुत्रविषयणीच्छार्थः। आख्यातस्याश्रयत्वम्। तेनात्मसम्बन्धिपुत्रविषयकेच्छाश्रय इति बोधः। एवं भार्यायति, पयस्यति राजीयतीति सिद्धम्। अस्मिन्नर्थे काम्यच्प्रत्ययोऽपि साधुः। पुत्रकाम्यतीत्यादिप्रयोगः। आत्मसम्बन्धिपुत्रविषयककामनाश्रयत्वाश्रय इति बोधः। पुत्रमिवाचरति भृत्यमित्यत्रोपमानादाचारे क्यजिति क्यच् प्रत्ययः। पुत्रीयति भृत्यमिति सिद्धम्। आचार आचरणं व्यवहार इति यावत्। तेन भृत्यविषयकपुत्रतुल्यव्यवहारानुकूलकृत्याश्रय इति बोधः। एवं खर आत्मानमश्वमिवाचरति इत्यत्र सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विपोलुगित्यनेन क्विप्प्रत्ययलोपः। तेनाश्वतीति प्रयोगः। तेनाश्वतल्यव्यापारानुकूलकृत्याश्रय इति बोधः। एवं प्रभवन्ति भृत्याः, रिपवन्ति मित्राण्यादि सिद्धम्। अधिकरणाच्चेत्याचारेऽपि क्यच्-प्रत्ययः। "प्रासादीयति यः कुट्याम्, पर्यङ्कीयति मञ्चके। तस्य सन्तोषशीलस्य कुरूपाप्यप्सरायते।" तेन कुटिविषयकप्रासादाधिकरणकव्यवहारानुकूलकृत्याश्रय इति बोधः। वृद्धः शिशुरिवाचरति इत्यर्थो कर्त्तुः क्यङ्सलोपश्चेति क्यङ्प्रत्ययः। तेन शिशूयते वृद्ध इत्यत्र शिशुतुल्यव्यवहारानुकूलकृत्याश्रय इति बोधः। एवमेरण्डोऽपि द्रुमायते। काकोऽपि गरूडायत इत्यादि सिद्धम्।

अथैकत्वादिपरार्द्धपर्यन्तसंख्याविचारः—

एकं दशं शतं चैव सहस्रमयुतं तथा,
लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्वुद एव च।
वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शंखपद्मौ च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च दशवृद्धया यथोत्तरम्।

तत्रैकादशाद्यष्टादशान्तसंख्याशब्दा विशिष्ट एव शक्ताः। केवलसंख्योपस्थितिर्लक्षणयैवेति बोध्यम्। उनविंशत्तिर्ब्राह्मणाः। ब्राह्मणानामुनविंशतिरितिबोध्यम्। एषामेकवचनं सर्वत्रैव। यत्र तु एकादिपदगतद्वित्वबहुत्वं तात्पर्यविषयं तत्र द्विवचनादिकमपि प्रयोज्यम्। एवमे-

कादिचतुरन्ताः शब्दा वाच्यलिङ्गतयात्रिलिङ्गकाः। एवमेको ब्राह्मण इत्यत्र जातिपुरस्कारेण ब्राह्मणमात्रोपस्थितौ एकपदं तत्र सार्थकम्। द्वौ ब्राह्मणावित्यत्र द्विपदं द्रुततरबोधाय सार्थकम्। त्रयो ब्राह्मणाश्च-त्वारो ब्राह्मणा इत्यादौ बहुवचनेन बहुत्वावच्छिन्नब्राह्मणोपस्थितौ त्र्यादीनां व्यावर्तकतया सार्थकत्वमेवेति निष्कर्षः।

आलोच्य विविधं ग्रन्थं विचार्य च पुनः पुनः।
कृतेयं जयकृष्णेन शब्दार्थसारमञ्जरी॥

इतिश्री जयकृष्णभट्टाचार्यविरचितशब्दार्थसारमञ्जरी समाप्ता।